लोक-कल्याण महामण्डल विधान

(षोडसकारण बृहद् आराधना)

रचयिता- आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

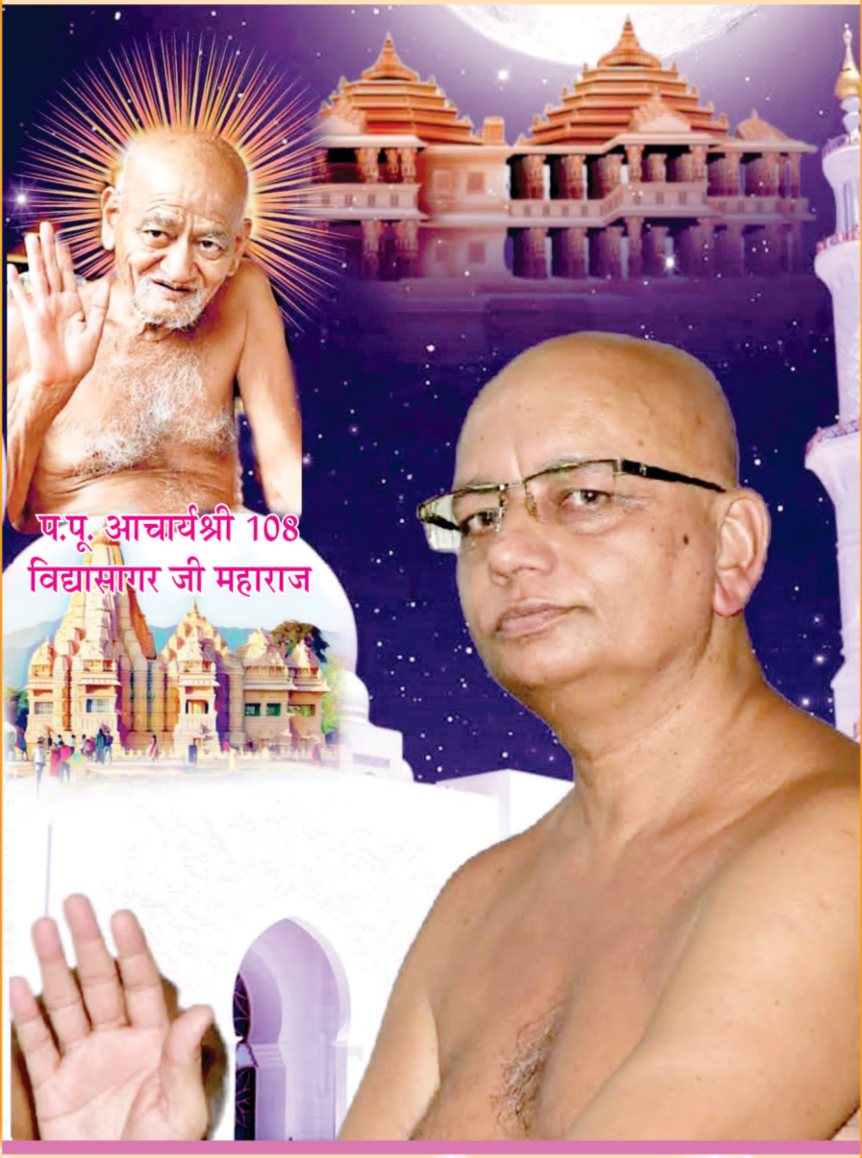

प.पू. आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

लोक–कल्याण
महामण्डल विधान

(षोडसकारण बृहद् आराधना)

रचयिता–
प.पू. आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

प्रकाशक
आर्जव–तीर्थ एवं जीव–संरक्षण ट्रस्ट

कृति – लोक-कल्याण-महामण्डल विधान
(षोडसकारण बृहद् आराधना)

रचयिता – आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

सम्पादन – आर्यिकाश्री 105 प्रतिभामति माताजी द्वारा

तृतीय संस्करण – सन् 2023

पावन सन्दर्भ – प.पू. आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज का
36वाँ पावन वर्षायोग, अशोकनगर (म.प्र.)

प्रतियाँ – 1000

प्रकाशक – आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास
बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357,
9425601161, 9425601832, 7222963457

मुद्रक एवं प्राप्ति स्थान – पारस प्रिंटर्स, भोपाल
207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1
एम.पी.नगर, भोपाल
फोन : 0755-4260034, 9826240876

लागत मूल्य – (रु. 100/-)

विषय-सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ सं
1.	सार्थक लोकोपकार	iv
2.	गुरु समर्पण	vii
3.	भक्ति की शक्ति	x
4.	शांतिधारा	xv
5.	लोक कल्याण विधान स्तुति	xix
6.	विधान प्रारम्भ	1
7.	गुरु-पूजन	193
8.	गुरु आरती	198
9.	लोक कल्याण विधान आरती	199
10.	लोक-कल्याण का पाठ	200

सार्थक लोकोपकार

–डॉ. अजितकुमार जैन

वैज्ञानिकों ने यह भलिभांति सिद्ध किया है कि हमारी भावनाओं का गहरा संबंध अन्तःस्रावी ग्रंथियों से होता है और भावनाएँ हमारे चेतन व मन को सक्रिय करती/ बनाती हैं। जब हम अपनी अन्तःस्रावी ग्रंथियों में परिवर्तन करते हैं उसका प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ता है और चेतन व मन को ठीक करके संतुलित, सद्व्यवहारिक एवं शांत बनाता है। जब हमारी भावनाएँ निर्मल और शुद्ध हो जाती हैं तो अंतःकरण-मन के साथ चेतना/आत्मा भी अपने आप पवित्र होने लगती है। ऐसा कहा गया है–

''यद्भावते तद् भवति''

हम जैसी भावना भाते हैं वैसा जीवन बन जाता है। साथ ही, भावना से भव को भी सार्थक बनाया जा सकता है। आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने स्व-पर कल्याण की उत्कृष्ट भावना के उद्देश्य से दक्षिण यात्रा पर सन् 1997 में तमिलनाडु प्रवास के दौरान **''तीर्थोदय-काव्य''** नामक अनुपम, अद्वितीय काव्य कृति की रचना की है जिसमें सोलहकारण भावनाओं को सरल पद्यमय बनाते हुए चारों अनुयोगों के सार का समावेश किया गया है। इसमें संसार से निकल कर तीर्थंकर बनने के लिए दैनिक चर्या एवं सर्वश्रेष्ठ विचारों के सृजन का वर्णन सूक्ष्मता से किया गया है। परमपूज्य धर्मप्रभावक आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने पर्वराज षोडसकारण व्रत विधान के अमृत से जन-जन के भव-दुःख नाश करके लोक-कल्याण करने की भावना से दक्षिण भारत से आरम्भ करते हुए भारत की संपूर्ण दिशाओं में बांटते जा रहे हैं। षोडसकारण एवं दशलक्षण आदि महापर्व भव्यात्माओं के लिए मोक्षमहल की सीढ़ी के समान हैं। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को भाने से एवं इनका शुद्ध रीति से व्रतानुष्ठान करने से तीर्थंकर प्रकृति का संचय होता है जिससे यह आत्मा लोकपूज्य बनकर, समवसरण की अधिकारी होकर अन्त में मुक्तिपद को प्राप्त करती है। गुरुवर की यही

लोक-कल्याण भावना फलीभूत करने के लिए हम सभी को षोडसकारण व्रत को अपनाना चाहिए और भावना यही रखना चाहिए कि:-

कैसे निकलें भवसागर से, दुखित हो रहे ये प्राणी।
दुःख छूटे व मोक्ष शीघ्र हो, ऐसा सोचे जो ज्ञानी॥
वही जगत् को सुखी चाहने-वाला जन उपकारी है।
उसे मिले वह तीर्थंकर पद, समवसरण-अधिकारी है॥

(ती.का.13)

भारत देश के सभी प्रमुख राज्यों में प्रवचनों, पंचकल्याणकों, षोडसकारण व्रत आदि शुद्ध आम्नायपूर्वक सम्यग्दर्शन आदि के माध्यम से श्रावकों को उनकी प्रांतीय भाषाओं का अभ्यास कराकर उसके माध्यम से अनेक भव्यों को मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, प्रतिमाधारी आदि बनाकर महती प्रभावना की एवं करते जा रहे हैं।

गुरुवर आर्जवसागर जी महाराज के द्वारा जो सप्त शतकों में रचा गया है और जिसके द्वारा यह विधान बना है ऐसा '**महाकाव्य तीर्थोदय काव्य**' उसके ऊपर 6 से 7 नवम्बर सन् 2004 में द्वि दिवसीय टी.टी. नगर, भोपाल में ''**वर्तमान परिपेक्ष में षोडसकारण भावनाओं का व्यवहारिक रूप**'' विषय पर प्रथम विद्वत् संगोष्ठी हुई थी। जिसमें डॉ. श्री. श्रेयांसकुमार जी बड़ौत, श्री निरंजनलाल बैनाड़ा आगरा, डॉ. प्रो. रतनचन्द्र जैन भोपाल, डॉ. श्री जयकुमार जी जैन मुजफ्फरनगर, डॉ. प्रो. एल.सी. जैन जबलपुर, प्राचार्य श्री निहालचन्द्र जी बीना, डॉ. श्री देवकुमार जैन (वैज्ञानिक) दिल्ली, प्राचार्य श्री लालचन्द्र 'राकेश' गंजबासौदा, श्री सुरेश जैन आई.ए.एस. भोपाल, श्री पं. भागचन्द्र जैन 'इन्दू' छतरपुर, डॉ. श्री धीरेन्द्र पाल सिंह कुलपति सागर वि.वि., श्री शिखरचन्द्र जी जैन साहित्याचार्य सागर, डॉ. प्रो. सुधीर जैन भोपाल, श्री श्रीपाल जैन 'दिवा' भोपाल, श्री अजित पाटनी भोपाल, श्री संजय जैन पथरिया, श्री जितेन्द्र जैन जबलपुर आदि विद्वत्गण आमंत्रित थे। सभी विद्वानों के विषय तीर्थोदय महाकाव्य में वर्णित सोलह भावनाओं पर आधारित थे।

हम लोगों ने लगभग १६ वर्ष पूर्व षोडसकारण व्रत परम पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज से लिए थे। आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज के संघस्थ आर्यिकारत्नश्री 105 प्रतिभामति माताजी ने सर्वजनोपकार एवं हम लोगों के षोडसकारण व्रत के उद्यापन हेतु आचार्यश्री द्वारा रचित ''**तीर्थोदय काव्य**'' आदि कृतियों से विधान की सामग्री संग्रहीत की है एवं विधान पुस्तक तैयार हुई है। ऐसे उत्कृष्ट नवीन महामण्डल विधान का नामकरण आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने लोक-कल्याण-विधान (षोडसकारण वृहद् आराधना) किया है जो लोकोपकार हेतु सार्थक नाम प्राप्त हुआ जिसके लिए हम षोडसकारण व्रती भक्त अपने व्रत उद्यापन के सुअवसर पर आचार्यश्री एवं आर्यिका माताजी को कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इत्यलं!

अगस्त सन् 2019

प्रस्तुति-श्रीमती सुषमा ध.प.डॉ. अजितकुमार जैन
प्रकाशक सम्पादक, भाव-विज्ञान पत्रिका
114, डी.के. काटेज, बावड़िया कलाँ,
भोपाल (मो.: 7222963457, व्हाट्सएप 9425601161)

गुरु-समर्पण

आगम में जिनेन्द्र भक्ति की महिमा वर्णित है कि-

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूत पन्नगाः।
विषं, निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

(स.भ.11)

जिसका अर्थ होता है कि जिनेन्द्र भगवान् की की गयी स्तुति-आराधना से संसार के सभी विघ्न बाधायें दूर भाग जाती हैं। शाकिनी-डाकिनी भूत-प्रेत तथा सर्प की बाधायें भी दूर हो जाती हैं यहाँ तक कि विष भी निर्विषता को प्राप्त हो जाती हैं। ऐसी है वीतराग प्रभु के चरणों की आराधना की महिमा। ऐसी षोडसकारण भावना रूप गुणों की आराधना 'भावना भव-नाशनी' रूप होती है। ये सोलह भावनायें जीवों को तीर्थंकर बनाकर लोक-कल्याण करते हुए मुक्तिपद को प्रदान करती हैं।

आचार्य श्री 108 आर्जवसागरजी महाराज ने लोक-कल्याण की भावना को दृष्टि में रखकर जो काव्यों की रचना की है उन्हीं काव्यों से यह 'लोक-कल्याण महामण्डल विधान' तैयार हुआ है जिसका दूसरा नाम 'षोडसकारण वृहद्-आराधना' भी रखा गया है। उस विधान को अपने अशुभ कर्मों की क्षय की भावना से सम्पन्न किये जाने पर अपनी लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी।

गुरुवर की उत्कृष्ट भावना यही है कि समूचे भारत में लोग षोडसभावनाओं को नियम, व्रत पूर्वक सम्पन्न करते रहें और ऐसे व्रत करने वालों की संख्या बढ़ती चली जाये; क्योंकि पूर्व काल में लोग वर्ष में आने वाली भाद्र, माघ, चैत्र मास रूप तीनों शाखाओं के षोडसकारण व्रत सम्पन्न किया करते थे। लेकिन वर्तमान की शक्ति घटने के कारण शनैः शनैः भव्य लोग भाद्रपद सम्बन्धी मात्र एक शाखा तक सीमित होने लगे

और कुछ लोगों को तो षोडसकारण-व्रत की विस्मृति भी होने लगी। इस वजह से इस व्रत की प्रभावना करना अति आवश्यक और उत्तम प्रतीत हुआ। अतः गुरुदेव ने हरेक चातुर्मास में सामूहिक व्रतानुष्ठान को आयोजित करने के लिए समाज के जिनधर्मी लोगों को प्रोत्साहित किया और आज तक करीब 25 वर्षों में सहस्राधिक भव्यों ने इस व्रत को सम्पन्न करते हुये इसकी परम्परा को आगे बढ़ाया और इसकी साधना से लोगों की विशुद्धि में विशिष्ट सम्वृद्धि हुई। दर्शन की निर्मलता और प्रतिमाधारी मात्र क्या? लोग दीक्षित भी हो गये। यह इस व्रत का ही अतिशय और माहात्म्य जानना चाहिए। गुरुदेव ने यह एक सामूहिक व्रत करवाने की परम्परा जो चलायी है उसमें उनकी लोक-कल्याण की भावना निहित है। जिससे देश भर में एक अभूतपूर्व प्रभावना हो रही है। गुरुवर के संघ की शुद्ध परम्परा, सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता, उत्तर के साथ दक्षिण आदि प्रदेशों की भाषाओं का भी ज्ञान, धार्मिक पाठशालाओं को प्रारम्भ कराने में रुचि, पंचकल्याणक और वृहद् रूप में महामण्डल विधानों को सम्पन्न कराने का उत्तम भाव, अनेकानेक जिनबिम्ब वेदी प्रतिष्ठायें और पंचकल्याणक सम्पन्न कराने में उत्साह उनकी आंतरिक करुणा और विशुद्धि रूप प्रभावना को दर्शाता है।

इसी पावन संदर्भ में गुरुवर ने जो तीर्थोदयकाव्य बनाया था उसमें वर्णित षोडसभावनाओं के पद्यों में से मण्डल विधान के योग्य काव्यों को चुनकर और गुरुवर के ही द्वारा कुछ ग्रन्थों पर अनुवादित पद्यों को चुनकर और कुछ नये पद्यों को समाहित कर एक नवीन षोडस-कारण-वृहद्-आराधना रूप महामण्डल विधान की रचना की गयी है, जिसका नाम हुआ है 'लोक-कल्याण-विधान'। जिसके सम्पादन का और मन्त्रादि बनाने का श्रेय संघस्थ आर्यिकाश्री प्रतिभामति माताजी को जाता है। जिन्होंने अपने गुरुवर की काव्य बगिया से आध्यात्मिक सुमनों को चुनकर भव्यों के हृदयलोक को महकाने का सफल प्रयास किया है और अपने स्वर से

गाकर; हम लोग जान सकते हैं कि कुछ छन्दों को अनेकानेक लयों में भाव-विभोर होकर गाया जा सकता है और अपने जीवन में भगवान् की भक्ति में लवलीन होते हुए प्रभु के गुणों की सुगंधी से हृदय-लोक को महकाया जा सकता है। इसके लिए हम आर्यिकाश्री 105 प्रतिभामति माताजी के बड़े ही कृतज्ञ और आभारी हैं।

हमारी अन्तिम भावना है कि हम गुरुवर के उपकार को कदापि न भूलते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हुए प्रभु से यही भावना भाते हैं कि सभी लोग इस महामण्डल विधान को यथा अवसर हमेशा रचाते रहें, सम्पन्न करते रहें और सातिशय पुण्य का अर्जन करते हुए अशुभ कर्मों का नाश कर मुक्ति-पद की प्राप्ति करें। प्रभु चरणों में हमारी यही मंगल भावना है कि-

''तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौ प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति पद मैंने॥''

-(शांतिपाठ)

जाँचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
बुध जाँचहूं तुम भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥

-(देवस्तुति)

प.पू. गुरु चरणों में समर्पण भाव पूर्वक हमारा कोटि-कोटि वन्दन व नमोस्तु। वन्दनीय आर्यिका माताजी को वन्दामि।

अगस्त 2019

इंजीनियर बहिन ऋषिका जैन, बी.ई.
बहिन प्राची जैन, एम.कॉम.
दमोह

भक्ति की शक्ति

–आर्यिकारत्न प्रतिभामति माताजी

आचार्य श्री पूज्यपाद के मन्तव्य अनुसार भक्ति में मुक्ति देने की शक्ति होती है। वे कहते हैं कि –

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिदुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्ति श्रियं कृतिनः ।।(स.भ.8)

अर्थात् एक मात्र जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति ही इतनी सामर्थशाली होती है कि जिसके माध्यम से दुर्गतियों का निवारण हो जाता है, पुण्य का खजाना भर जाता है और अन्त में वह भक्ति परम्परा से मुक्ति रूपी लक्ष्मी को भी अवश्यमेव प्राप्त करा देती है।

विधान का अर्थ अनुष्ठान, नियोजन, विधि, यज्ञ, नियम, आराधना और विशेष पूजा आदि रूप होता है। यहाँ विधान का अर्थ बृहद् आराधना लिया है। इस विधान का नाम लोक–कल्याण–विधान रखा गया है और सोलहकारण भावनाओं के आधार पर रचे जाने के कारण इसे षोडसकारण वृहद् आराधना के रूप में जाना जायेगा।

अब प्रश्न होता है कि इस विधान के रचे जाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका समाधान यह है कि लोक–कल्याण की भावना के साथ षोडसकारण भावनाओं पर रचे गये विधानों में इतनी विशिष्ट विशुद्धि योग्य कथन सामग्री दृष्टव्य नहीं हुई और जिन अध्यात्म योगी गुरुवर ने अपनी आत्म विशुद्धि से और ऐसे षोडसकारण पर्व पर भाद्रपद मास में तीन वर्षों तक व धारणा पारणा रूप से व्रत सम्पन्न किये। एक आहार एक उपवास रूप उस तपस्या के माध्यम से जो हमें यह आत्म–विशुद्धि रूप षोडसभावना पर काव्य रूप नवनीत प्रदान किया। उसके समान किसी और अन्य के द्वारा इतना सरल, सहज और मधुर विषय उपलब्ध नहीं हुआ एतदर्थ इस लोक–कल्याण विधान को उपलब्ध कराने की अत्यन्त

आवश्यकता की पूर्ति मंगलमय पूर्ण हुई है।

अब है बात रचना सामग्री की; तो हमने पाया है कि गुरुवर ने जो षोडस भावनाओं पर तीर्थोदय-काव्य की रचना की उससे अधिकतम काव्य- पुष्प चुने जायें और उनके द्वारा रचित सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-कवितायें और जिनागम संग्रह आदि से विशिष्ट लालित्य पूर्ण काव्य पुष्पों को चुनकर एक विशिष्ट मण्डल विधान रूपी माला तैयार की जाये। और बस, गुरुवर का आशीष मिलते ही यही हुआ कि अब वह माला तैयार होकर जन-जन के कण्ठ विराजित होने वाली, चहुँ ओर अपनी महक फैलाने वाली माला बन गयी।

जिसमें गुरुवर के द्वारा रचित तीर्थोदयकाव्य के 445 पद्य, सम्यक् ध्यान शतक के 35 पद्य, इष्टोपदेश पद्यानुवाद के 26 पद्य, द्रव्य संग्रह पद्यानुवाद के 23 पद्य, वारसाणुवेक्खा पद्यानुवाद के 16 पद्य, समाधितंत्र पद्यानुवाद के 1 पद्य, तत्त्वासार पद्यानुवाद के 2 पद्य, आर्जव कविताएँ कृति के 5 पद्य, और धर्मभावना शतक के 4 पद्य तथा गुरुवर द्वारा बनाये गये नौ नये पद्य इसमें समाहित किये गये हैं।

इस लोक-कल्याण विधान में अर्घ रूपी मन्त्रों की बड़ी विशेषता है। जिन मन्त्रों से सम्यग्दर्शन तो बड़ा निर्मल और पुष्ट बनता ही है। साथ में रूढ़ी, मिथ्यात्व और अज्ञानता का पलायन भी होता है। तथाहि आडम्बर और विषयवासना का नाश होकर अध्यात्म की लहरें हृदय में कल्लोलें लेने लग जाती हैं। मन्त्रों की शुद्धि गुरुवर के सान्निध्य में करके हम धन्य हुये।

गुरुवर आचार्य श्री आर्जवसागरजी महाराज ने युवा अवस्था में ही उपवास पूर्वक षोडसकारण व्रत प्रारम्भ करके जो जन-जन के लिए उत्साह दिया और स्वयमेव ही निज भावना से अनेकानेक जन सामूहिक रूप से उपवास व एकाशन के साथ शुद्ध रीति से व्रत करने में संलग्न हुये। बाहर प्रदेशों से भी आकर लोग चाहे दक्षिण उत्तर क्यों न हों, गुरुवर के चरणों में आकर बत्तीस दिनों तक व्रत करते हैं और षोडस भावनाओं का

गुरुमुख से वाचन, प्रवचन सुनते हैं और अपने सम्यग्दर्शन आदि को निर्मल बनाते हैं। यहाँ तक कि इस अनुष्ठान में व्रत करने वालों और गुरुमुख से काव्य सुनने वालों के अनेक रोग, व्याधियाँ भी पलायन कर जाते हैं; यह भी एक अतिशय या विशेषता माननी चाहिए या इस यह मंगलमय अनुष्ठान और गुरु सान्निध्य में हुये शुभ कार्य रूप क्षणों का ही फल जानना चाहिए।

भावनायें तो बहुत प्रकार की होती हैं लेकिन षोडसकारण भावनायें जगत् में सबसे विशिष्ट मानी गई हैं। इसका कारण है कि दर्शन की निर्मलता को मूल में रखते हुये ये भावनायें तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराती है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध चतुर्थ गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। गुरुवर के उपदेश में सुना था कि आगम ग्रन्थों में भले ही पूर्वाचार्यों ने तीर्थंकर प्रकृति के लिए केवली, श्रुतकेवली का पादमूल आवश्यक बतलाया है, परन्तु तत्त्वार्थसूत्रकार दर्शनविशुध्यादि सोलह भावनाओं से आज भी केवली, श्रुतकेवली के अभाव में भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध होना स्वीकार करते हैं ऐसा ध्वनित होता है अन्यथा वे एक सूत्र और बना सकते थे जैसे कि-

'केवली द्वय पादमूले'

अर्थात् केवली व श्रुतकेवली के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होना संभव है। तो ऐसा नहीं बनाया, अतः आज भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने योग्य सोलह भावनाओं को भले प्रकार से भाने वाली और इस मनुष्य पर्याय को सार्थक बनाने वाली भव्य आत्माएँ सम्यक् व्रतानुष्ठान पूर्वक इस विधान को रचाने से तीर्थंकर पद को पाकर लोक-कल्याण की भावना को अतिशीघ्र सफल बनायें ऐसी हमारी मंगल भावना है।

प्रस्तुत लोक-कल्याण-विधान में जिन छन्दों के प्रयोग किये गये हैं वे छन्द सोलह-चौदह मात्रिक ज्ञानोदय (शम्भू)छंद-तेरह-ग्यारह मात्रिक दोहा छन्द और अन्त में द्वि दीर्घ से प्रारम्भ होने वाला वसन्ततिलका

छन्द इस तरह से ये छन्द गुरुवर के द्वारा सुष्टु रूप से प्रयुक्त हुये हैं। इन छन्दों ज्ञानोदय छन्द के 502 पद्य, दोहा छन्द के 113 पद्य और वसंततिलका छन्द के 2 पद्य, संग्रहीत हुए हैं। विशिष्ट कर इन छन्दों को हमने विभिन्न धार्मिक लयों में गाने का प्रयास किया है और उनके उदाहरण भी यथास्थान प्रस्तुत किया है। जिन्हें भव्यगण अपनी सुविधा अनुसार प्रयुक्त कर अपूर्व काव्यों का रसपान कर सकते हैं।

महामंगल स्वरूप ऐसे षोडसकारण भावनाओं आधारित लोक कल्याण-विधान को भव्यगण सदा ही कभी भी किसी भी दिन रचा सकते हैं। क्योंकि अच्छे कार्यों को करने के लिए हर वक्त मंगलमय होता है। परन्तु विशेषकर वर्ष में तीन बार भाद्रपद माह, माघ माह और चैत्र माह में आने वाली तीनों षोडसकारणों में दशलक्षण पर्व के पूर्व सोलह दिवसों में एक-एक भावना के अनुरूप अथवा दशलक्षण पूर्वोपरान्त पूर्णिमा एवं एकम् ऐसे द्वि दिवसों में अतिसुन्दर मण्डल मांडकर वह मण्डल नव धान्यों से, या रंगे हुये चावलों से अथवा विभिन्न रंगों से बना हुआ रचाया जाना चाहिए। फ्लैक्स से बना हुआ मण्डल शुद्धि, विशुद्धि योग्य नहीं होता। विधान गोले नारियल, बादाम, सुपाड़ी, लवंग आदि अष्टमंगल द्रव्यों के साथ भक्ति पूर्वक सम्पन्न किया जाना चाहिए। यह महामण्डल विधान परम विशुद्धि का कारण बनते हुए लोक पूज्य तीर्थंकर पदवी को पाने में महा निमित्त बनेगा और हमारा मुक्ति पाने का लक्ष्य भी अवश्यमेव पूर्ण हो जावेगा।

षोडसकारण व्रत कथांश-

एक दरिद्र कन्या ने षोडसकारण व्रत पालन से विदेह क्षेत्र के सीमन्धर तीर्थंकर भगवान का एवं श्रीषेण राजा ने वैयावृत्ति भावना से आगे शांतिनाथ तीर्थंकर का पद पाया था। रावण अर्हद्भक्ति भावना से एवं श्रीकृष्ण वैयावृत्ति भावना से आगे तीर्थंकर बनेंगे। अतः हमें भी ऐसे

अनन्तानन्त जीवों के समान षोडसकारण व्रत-भावना से तीर्थंकर पद की भावना भाते हुए मुक्ति-पथ को अपनाना चाहिए।

हम अपना परम सौभाग्य मानते हैं कि गुरुवर के आत्मानुभव से सजाई गई काव्य बगिया से लोक-कल्याण विधान (षोडसकारण वृहद् आराधना) के सुयोग्य काव्य सुमनों को चयन करने का हमें सुअवसर का सुयोग मिला। जो कि पूर्व जन्म के पुण्य का फल ही हम मानते हैं।

इस महामण्डल विधान में वर्णित जिनेन्द्र प्रभु के प्रति हमारी भावना वैसे ही प्रकट होती है कि जैसे समाधिभक्ति में कहा है कि -

तवपादौ मम हृदये, मम हृदये तव पदद्वयेलीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः।।

(स.भ.7)

हे जिनेन्द्र प्रभु! अथवा हे वीतरागी गुरु। जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण कमल मेरे हृदय में हमेशा विराजित रहें और मेरा हृदय आपके पवित्र चरणों में लीन रहे। ऐसी पवित्र भावना के साथ हम आपके पद कमलों की पूजा आराधना करते हुए आपकी गुण रूपी पराग पीते रहें और हमें अपने जीवन को रत्नत्रय रूपी गुणों से महकाते रहें।

भव्यों के प्रति हमारी आन्तरिक भावना यही है कि जिन गुरुवर के काव्य व जिन गुरुवर की असीम कृपा से यह विधान तैयार होकर हम सबके समक्ष आया है इसे पुनः पुनः पढ़कर मधुर स्वरों में गाकर सातिशय पुण्य का अर्जन करते हुए हम तीर्थंकर जैसे पद और मोक्ष महल को पाकर धन्य हो जावें। इसी मंगलमय भावना के साथ गुरुवर के चरणों में उनके चिर जीवन के कामना करते हुए कोटि कोटि नमोस्तु अर्पित करते हैं। इत्यलं।।

वर्षायोग सन् 2019
अशोकागार्डन, भोपाल

(लघु शांतिधारा)

सकल-भुवन-नाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै
रभिषव-विधि-माप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन-वारां, बिन्दु-रेकोऽपि नृणाम्,
प्रभवति विदधातुं, भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम्॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः ह्रीं द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति वृहच्छान्तिमन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

बृहत् शांतिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः
श्रीवीतरागाय नमः
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

चत्तारि मंगलं; अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा; अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरिहंते सरणं पव्वज्जामि सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि; केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु विनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वक्षाम-डामर-विघ्न-विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्वशान्ति तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु।

ॐ ह्रूँ क्ष्रूं फट् किरिटं किरिटं घातय घातय पर विघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्द-छिन्द मिथ्यामन्त्रान् भिन्द-भिन्द क्षः क्षः ह्रूं फट् सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्वविघ्नशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ अ ह्रां सि ह्रीं आ ह्रूं उ ह्रौं सा ह्रः जगदापद्‌विनाशनाय ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय नमः सर्वशान्ति कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय अशोकतरु-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय अशोकतरु-सत्प्रातिहार्य-शोभन-पदप्रदाय ह्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय सुरपुष्पवृष्टि-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय सुरपुष्पवृष्टि सत्प्रातिहार्यशोभन-पदप्रदाय भ्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय दिव्यध्वनि-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय दिव्यध्वनिसत्प्रातिहार्य-शोभनपद-प्रदाय म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय चामरोज्जवल-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय चामरोज्जवल-सत्प्रातिहार्य-शोभनपद-प्रदाय र्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय सिंहासन-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय सिंहासन-सत्प्रातिहार्य-शोभनपद-प्रदाय घ्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय भामण्डल-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय भामण्डलसत्प्रातिहार्य-शोभनपद-प्रदाय झ्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय दुन्दुभि-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय दुन्दुभि-

सत्प्रातिहार्य-शोभन-पदप्रदाय स्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय छत्रत्रय-सत्प्रातिहार्य-मण्डिताय छत्रत्रय-सत्प्रातिहार्य-शोभन-पदप्रदाय ख्म्ल्व्र्यूं-बीजाय सर्वोपद्रव-शान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय प्रातिहार्याष्ट-सहिताय बीजाष्ट-मण्डन-मण्डिताय सर्वविघ्नशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

तव भक्ति-प्रसादात् लक्ष्मी-पुर-राज्यगेह-पद-भ्रष्टोपद्रव-दारिद्रोद्-भवोपद्रव-स्वचक्र-परचक्रोद्-भवोपद्रव-प्रचण्ड-पवनानल-जलोद्-भवोपद्रव-शाकिनी-डाकिनी-भूत-पिशाच-कृतोपद्रव-दुर्भिक्ष-व्यापार-वृद्धि-रहितोपद्रवाणां विनाशनं भवतु।

श्रीशान्तिरस्तु। शिवमस्तु। जयोऽस्तु। नित्यमारोग्यमस्तु। सर्वेषां (अस्माकं) पुष्टिरस्तु। तुष्टिरस्तु। समृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। सुखमस्तु। अभिवृद्धिरस्तु। दीर्घायुरस्तु। कुलगोत्र-धन-धान्यं सदास्तु। श्रीसद्धर्म-बलायु-रारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

(यन्त्र पर धारा)

ॐ ह्रीं भूर्भुवः स्वरिह विघ्नौघवारकं यन्त्रं वयं परिषिञ्चयामः।

(श्रीजी पर धारा)

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सम्पूर्ण-कल्याण-मंगलरूप-मोक्षपुरुषार्थश्च भवतु।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु-शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

अर्घ्य

पानीय-चन्दन-सदक्षत-पुष्पपुञ्ज-
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल-व्रजेन।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर-मनन्त-शक्तिं,
सम्पूजयामि महसा महसां निधानम्॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वापमीति स्वाहा।

हे तीर्थपा! निज-यशो-धवली-कृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भवदुःख-महा-गदानाम्।
सद्भव्य-हृज्जनित-पंक-कबन्ध-कल्पा,
यूयं जिनाः सतत-शान्तिकरा भवन्तु॥

शान्त्यर्थं पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

(यह पढ़कर शान्ति के लिए पुष्पांजलि छोड़ें)

नत्वा मुहु - र्निज - करै - रमृतोप - मेयैः,
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र-करावदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्त-रम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्ब-मार्जनं करोमि

(यह पढ़कर शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र से प्रतिमाजी को पोछें।)

स्नानं विधाय भवतोट-सहस्र-नाम्ना
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षु-रिष्ट-मिनतेऽष्ट तयीं विधातुं,
सिंहासने विधि-वदत्र निवेशयामि॥

ॐ ह्रीं श्रीसिंहसने जिनबिम्बं स्थापयामि।

(यह पढ़कर प्रतिमाजी को सिंहासन पर विराजमान करें।)

जल-गन्धाक्षतैः पुष्पैश्-चरु-दीप-सुधूपकैः।
फलै-रघै-र्जिनमर्चे-जन्मदुःखापहानये॥

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थितजिनायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रम् पाप नाशकम्।
जिनगंधोदकं वंदे अष्टकर्म विनाशकम्॥

ॐ ह्रीं जिनगन्धोदकं स्वललाटे धारयामि (गन्धोदक शिर पर लगावें)
एक कायोत्सर्ग (जाप) पूर्वक बैठकर त्रिबार नमोस्तु निवेदित करें।

•••••

लोक-कल्याण-विधान स्तुति

-आचार्यश्री आर्जवसागरजी

जिन-कल्याणक के गुण गाते, कल्याणक को प्राप्त करें।
हो कल्याण सु-भव्य जनों का, मोक्ष सुपद को प्राप्त करें॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 1॥

प्रातिहार्य की महिमा न्यारी, जग में मंगलकारी हो।
जन-जन का वह क्षेम करे जो, हरे हृदय, शुभकारी हो॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 2॥

भामण्डल में सप्त भवों के, दृश्य जहाँ दिख जाते हैं।
भवि निज-निज भव सफल बनाते, उत्तम सद्गति पाते हैं॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदा हि शुभ अभिनन्दन हो॥ 3॥

तीर्थंकर का परिकर शुभमय, परम अहिंसक सदा रहा।
शेर, गाय मिल नीर पियें जहँ, जियो हि मिल-जुल बता रहा॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 4॥

छत्रत्रय का वैभव जग के, स्वामी-पन को बतलाता।
सदा प्रभो की छत्र-छांव में, जग-प्राणी सुख को पाता॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 5॥

चँवर ईशता को बतलाते, अमर बनाते भव्यों को।
तीर्थंकर की स्तुति, पूजन-करें, मिले शिव भव्यों को॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 6॥

इंद्र-इंद्राणि नृत्य रचाते, मधुर-गीत प्रभु के गाते।
नर, नारी भी हर्ष मनावें, अतिशय-पुण्यार्जन पाते॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 7॥

समवशरण की वंदन, पूजन, भविजन नित्य रचाते हैं।
महा-मुनीन्द्र व गणधर, नर, सुर, भव समुद्र तिर जाते हैं॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 8॥

सोलहकारण-भावन भाकर, तीर्थंकर का बंध करें।
'स्वर्ग-लोक' में गमन करें फिर, चौथा युग, जिन शरण गहें॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 9॥

समवशरण में शरण सभी को, दिव्य-ध्वनि का सौख्य वरें।
बन निर्ग्रन्थ व आत्म-ध्यान से, कर्म क्षपण कर मोक्ष लहें॥
रहे लोक-कल्याण भावना, तीर्थंकर की वंदन हो।
प्रभु-वाणी को सुनकर श्रुत का, सदाहि शुभ अभिनन्दन हो॥ 10॥

रचना स्थान- जैसीनगर, सागर (म.प्र.)

दिनांक : 30-01-2021

लोक-कल्याण-महामण्डल विधान

मंगलाचरण

दोहा

जहाँ लोक कल्याण हो, हो उपकार महान।
तीर्थंकर बन आत्मा, हो जग पूज्य प्रधान॥

॥ मण्डलोपरि पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्॥

समुच्चय पूजा

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- कितना प्यारा तेरा द्वारा .....

पूर्ण लोक के जीव जिसे हैं, श्रद्धा-पूर्वक नमें सदा।
परमेष्ठी जो वीतरागमय, परम पूज्य को भजूँ सदा॥
सोलहकारण तीर्थ-भावना, भाऊँ कर्म नशाने को।
विधान लोककल्याण करूँ मैं, मोक्ष महासुख पाने को ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणानि अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणानि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणानि अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

॥ जल॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥

भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडसकारणेभ्यः जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडसकारणेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडसकारणेभ्यः अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडसकारणेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥

भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
सोलहकारण भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
भावन सोलह भाय जो, कट जाता सब पाप ।
भाने में जग भावना, मिले न जिनवर जाप ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य

(ज्ञानोदय छन्द)

सोलहकारण सभी भावना, आपस में पूरक होतीं ।
एक बिना दूजी ना होवे, एक रहे तो सब होतीं ॥
शिखामणी-सम सम्यग्दर्शन, जिसके मस्तक पर शोभे ।
सभी धर्म, सोलहकारण का, मूल रहा जो भव खोवे ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

षोडसकारण भावना, जानो मेरु समान।
सब पर्वत नीचे दिखें, दें शिव-पद शुभ जान॥

(ज्ञानोदय छन्द)

महापर्व है षोडसकारण, भविजन जिसका ध्यान करो ।
तीन-लोक में उत्तम पद जो, तीर्थंकर है प्राप्त करो ॥

देवेन्द्रों के समूह आकर, जिस पद को नित नमते हैं ।
आतम निर्मल बने जिसे तुम,भज लो जिनवर कहते हैं॥
कैसे निकलें भव-सागर से, दुखित हो रहे ये प्राणी ।
दुःख छूटे व मोक्ष शीघ्र हो, ऐसा सोचे जो ज्ञानी ॥
वही जगत् को सुखी चाहने-वाला जन उपकारी है ।
उसे मिले वह तीर्थंकर पद, समवसरण-अधिकारी है ॥
दर्शन निर्मल विनय शील गुण, सदा ज्ञान संवेग जहाँ ।
वहीं त्याग से तप बढ़ता है, साधुसमाधि सु-सेव जहाँ ॥
अर्हत् सूरि पाठक श्रुत में, नमन भक्ति शुभ प्रतिपल हो ।
षट् आवश्यक पालें उत्तम, प्रभावना सह वत्सल हो॥
यहाँ कही जो सोलहकारण, तीर्थंकर का कारण हैं।
मात्र अगर सम्यग्दर्शन हो, तो भी तीर्थ सु-साधन है॥
दर्शविशुद्धि भावन के बिन, तीर्थंकर हैं ना बनते।
कारण; दर्शन मोक्षमहल का, जिन सोपान प्रथम कहते॥
भक्तिभाव से सोलह भावन-का संदेश सदा गायें ।
सद्दर्शन रु बोध चरित पा, पुण्य खजाना सुख पायें ।।
तीर्थंकर भी बनकर जिनकी-जनकल्याणी वाणी हो।
पान करें जो; वसु विधि क्षयकर, मोक्ष सुखी वे प्राणी हों॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

जग-कल्याणी भावना, सर्व जगत् में प्रेम।
सदा जगाती सौख्य भी, करती जग का क्षेम॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्॥

1. दर्शनविशुद्धि भावना

(ज्ञानोदय छन्द)

॥ स्थापना ॥

लय- जीवन है पानी की बूंद......

वीतरागमय देव-शास्त्र-गुरु -पर श्रद्धा जब भवि धारे ।
तीन मूढ़ता षट् अनायतन, तज अपूर्व गुण-छवि धारे ॥
अष्ट अंग सह वसु मद तजकर, प्रशमादिक गुण को पाये ।
सम्यग्दर्शी बनता वह भवि, शीघ्र वही शिव को पाये ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥

दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै अष्टकर्म दहनायधूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
दर्शनविशुद्धि भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
दर्शन से हो धर्ममय, भव सुख सुंदर मान।
दर्शन से हो कर्मक्षय, शिव सुख सुंदर जान॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य

(लय- हे गुरुवर धन्य हो तुम.....)

वीतराग बन रागभाव से, पूर्णरूप से मुक्त हुए ।
लोकालोकी बने केवली, सर्वदर्शिता-युक्त हुए ॥
जगहितकारी दिव्य ध्वनि से, मिथ्यातम का नाश किया ।
मोक्षमार्ग में कर्म शमन कर, शिवसुख में है वास किया ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव श्रद्धा गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा॥ 1 ॥

जिनवाणी जो वीतराग जिन-से निकली मंगलकारी ।
ना होती है बाधित जग में, जन-ज़न के संकटहारी ॥
तत्त्व-मार्ग वा जिनवर गुरुके, लक्षण को बतलाती है ।
नहीं स्त्री वह, शास्त्र-रूप है, मोक्षमार्ग दर्शाती है ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यैः श्रद्धा गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा॥ 2 ॥

पंचेंद्रिय की विषय-वासना, की आशा से विरहित जो ।
कृषि व्यापारादिक आरंभों, की अनुमति से विरहित जो ॥

वाहन गृह धन वैभव से भी, बहुत दूर मुनि साम्य-धनी ।
लौकिकवार्ता, सरागता तज, बने गुरो भवि नमें गुणी ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्ग्रन्थ गुरु श्रद्धा गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

धर्म मानकर गंगा, सागर- में है अवगाहन करना ।
बालू पत्थर ढेर लगाना, नमन व पूजा भी करना ॥
गिरि से गिरना, सुख पाने को, अग्नि में है जल जाना ।
इत्यादिक इन लोक-मूढ़ता,-बस दुर्गति का दुख पाना ॥

ॐ ह्रीं श्री लोकमूढ़ता रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

बली-समा जो फल को फोड़ें, हिंसा का वो पाप भरें ।
मृत्यु-भोज या भण्डारा से, दीनों को संतप्त करें ॥
बाटें खाद्यपदार्थ रात में, जो नव-आंग्ल-वर्ष मानें ।
पंचम में मिथ्या सह उपजें, जन्म-दिवस विहर्ष मानें ॥
धर्म-पर्व में फोड़ पटाखा, प्राणी असंख्य जो मारें ।
रंग डालकर अनर्थ करते, बाटें पत्ती स्वीकारें ॥
फूलमाल अरु कदली से भी, देव सजा हिंसा करते ।
मिट्टी पुतले जला, व जल में-डुबा, मूढ़ता वे करते ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानोत्पन्न लोकमूढ़ता रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

सुरगति के सब देव सरागी, ना पूजित नर लोगों से ।
रहे असंयत अतः पूज्य ना-बनना चाहें लोगों से ॥
धन वैभव की उपलिप्सा-वश, जो इनकी पूजा करता ।
देव-मूढ़ता मिथ्यातम से, दुर्गति की पीड़ा सहता ॥

ॐ ह्रीं श्री देवमूढ़ता दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

गृह धन वाहन के त्यागी वा, मिथ्या तज समकितधारी ।
वीतरागमय परम गुरो वे, उपकारी मुनिपदधारी ॥
इनसे उल्टे धन वाहन भव-बंधन के नित कामों में ।
मठ वस्त्रादिक-सह भी होवें, उलझें लौकिक कामों में ॥

ॐ ह्रीं श्री गुरुमूढ़ता दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

स्वयं शत्रु से डरा यहाँ या, जग को भय दिखलाने जो ।
अस्त्र-शस्त्र को धारण करता, कर्म-शत्रु अपनाने जो ॥
सहज-रूप तज लज्जा धारे, अतः विविध भूषा में रत ।
तथा काम के बाण पुष्प में, रहे सरागी निश-दिन रत ॥
नहीं दृष्टि नाशा पर जिसकी, आशाओं पर दृष्टि रही ।
पंचेन्द्रिय के दुखों-सुखों की, सदा जहाँ अनुभूति रही ॥
ऊपर देवों के सुख को लख, दुखित हो रहा जो रागी ।
न भव-त्यागी कुदेव ऐसा, क्या जग का करता रागी ॥

ॐ ह्रीं श्री कुदेव प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥8॥

श्रद्धा ना है जिन-आगम पर, पुण्य-पाप भी ना जाने ।
भय आशा व स्नेह लोभवश, अज्ञ राग में सुख माने ॥
राजा का है सम्बंधी जो, उसे नौकरों से क्या भय ?
नहीं जानता मूढ़ आतमा, भजे सरागी, ना निर्भय ॥

ॐ ह्रीं श्री कुदेव भक्त प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।॥9॥

विषय-लालची व्रत संयम का, ना अनुपालन करता है ।
धन वाहन भूषा अरु मठ का, वह शरणागत रहता है ॥
सद्दर्शन बिन तन का मोही, बना कुलिंगी या दण्डी ।
रक्त श्वेत, भूषा-सह भी जो, मानो खतरे की झण्डी ॥

ॐ ह्रीं श्री कुगुरु प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

नाम, ख्याति, पूजा, धन, लोभी, सदा ढूँढते कुगुरु वे ।
कारण जैसे में तैसा हो, प्रसन्न रहें नित कुगुरु वे ॥
मिथ्या गुरु की संगति से जो, कभी न समकित गहता है ।
आगम-पथ से चले न इक दिन, मुनि-निंदा भी करता है॥

ॐ ह्रीं श्री कुगुरु भक्त प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

विषय-लालची अव्रतियों से, रचा गया है कुशास्त्र जो ।
काम-वासना, धन विकथा से, भरा हुआ है कुशास्त्र जो ॥
अनेकांत बिन जो एकांती,बातों को बतलाता है ।
सराग-पूजा मिथ्या-मत से, शस्त्र-समा दुख लाता है ॥

ॐ ह्रीं श्री कुशास्त्र प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

दुर्गति से ना भय है जिसको, मिथ्यातम भी ना जाने ।
सराग आगम शिर पर रखकर,कर पूजा सुख को माने ॥
वीतराग अरु स्याद्वादमय, आगम में मिथ्यादर्शी ।
करे मिलावट विषय-राग की, एकांती भव-दुख-दर्शी ॥

ॐ ह्रीं श्री कुशास्त्र भक्त प्रशंसा अनायतन दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

जिनवर ने जो कहा तत्त्व है,यही रहा अरु इसी तरह ।
नहीं अन्य है, अन्य तरह ना, दृढ़ जाने जो उसी तरह ॥
सब जग के उपकार-रूप में, जो जिन-आगम मुनिजन हैं ।
उनमें ना सन्देह करें जो, नि:शंकित वे भविजन हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री नि:शंकित गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

धर्म-कार्य को करनेवाला, भव-सुख कभी नहीं चाहे ।
मोक्ष पहुँचना लक्ष्य रहा है, ध्रौव्य-सुखी बनना चाहे ॥
लक्ष्य धान्य पाने का होता, कौन घास पाना चाहे ?
घास स्वत: ही मिलती भैया, फल शिव जो पाना चाहे ॥

ॐ ह्रीं श्री नि:कांक्षित गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

साधु जनों की मलिन देह को, देख घृणा ना जो करता ।
रत्नत्रय से सुपूज्य काया-में प्रमोद-भावन रखता ॥
तन सुंदर हो तथा आभरण, से भी जो संयुक्त रहे ।
दर्शन-ज्ञान-चरण न जिसमें, नहीं प्रशंसा-युक्त रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्सा गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

वीतराग जिन, शास्त्र, साधु से, विमुख कुदेवादिक में जो ।
नहीं रखें श्रद्धा, हैं धर्मी, दूर प्रशंसादिक में जो ॥
कुतत्त्व कुमार्ग भव-पीड़ा के, सदा हेतु हैं जाने जो ।
मिथ्यात्वी के चमत्कार में, सदा मूढ़ता माने वो ॥

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टि गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

पावन-पथ इस जैनधर्म की, अज्ञ अशक्त जनों द्वारा ।
हो निंदा गर उसे दूर वे, करें युक्ति आगम द्वारा ॥
श्रावक मुनि के दोष कभी भी, नहीं किसी से कहते हैं ।
स्वजनों-सम वे दोष ढाँककर, उपगूहन-गुण गहते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उपगूहन गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

दर्शन या चारित्रमोहवश, होते जो मिथ्यादर्शी ।
अरु असंयमी होते उनको, सुमग लगावें सद्दर्शी ॥
वहाँ स्व-पर का होता निश्चित, महा उपग्रह भवि जानो ।
तन मन से उपकार करो नित, रहा स्थितिकरण पहचानो ॥

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरण गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

रत्नत्रयमय सहधर्मी-जन, स्व-पर स्नेह सदा करते ।
नहीं कपट रख, सहज भाव से, यथा-योग्य आदर करते ॥
धर्मीजन के सम्मुख जाना, हाथ जोड़ना मिष्ट वचन- ।
कहना, सेवा करना उनको-और समझना निजी स्वजन ॥

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्य गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

जिनधर्मी जिन-मग में निश-दिन, सम्यक् पथ दर्शाता है ।
मिथ्यातम का खण्डन करता, शिवसुख-मार्ग दिखाता है ॥
दान, तपों अरु जिन-पूजा का, अतिशय जो बतलाता है ।
ज्ञान, चरित-नवकार मंत्र से, जिन-महिमा दर्शाता है ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रभावना गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

भवसंतति को हरनेवाला, सम्यग्दर्शन विभो कहें ।
अष्ट अंग से शोभे जग में, शिव पाने भवि जिसे गहें ॥
अष्ट अंग की सुंदरता बिन, तन जग में ना शोभित हो ।
नृप भी सेना बिना शत्रु से, नित ही रहता क्षोभित हो ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टअंग गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 22 ॥

नहीं जगत् में मेरे सदृश, ज्ञानवान पण्डित कोई ।
नहीं महाकवि, शास्त्री मुझ सम, जग में और दिखे कोई ॥
जो भी दिखते अज्ञ सभी हैं, जुगनू-सम सूरज आगे ।
ज्ञान-गर्वधर मिथ्यात्वी वह, तथा प्रशंसा जो माँगे ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 23 ॥

कितने जन हैं मुझे पूजते, तथा आरती करते हैं ।
बढ़ा-चढ़ाकर गुण भी गाते, फूल-मालती रखते हैं ॥
फूले जो इस पूजा-मद में, कर्म सँजोता दुख पाता ।
पूजा रागी मिथ्यादर्शी, नहीं पूज्य जिन बन पाता ॥

ॐ ह्रीं श्री पूजामद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 24 ॥

पिता-पक्ष के जन राजादिक, उच्च अगर तो मद करना ।
नहीं देखना नीचे जन को, ऊपर सिर करके चलना ॥
बड़ा रहा है मेरा कुल यह, धन वैभव भी क्या कहना ।
हीरा, मोती और खजाना, दुख क्या ? सुख में ही रहना ॥

ॐ ह्रीं श्री कुलमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 25 ॥

मातृ-पक्ष के भूपति जन हों, उच्च जाति के धनी अगर ।
नीचा देखे अन्य जाति को, मद धारे पापों का घर ॥
धर्म कहे नीचे से ऊपर, सदा उठाओ लोगों को ।
संकर ना वह वर्ण-लाभ हो, शिव पाओ तज भोगों को ॥

ॐ ह्रीं श्री जातिमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 26 ॥

बल-मद धारे कहता प्राणी, तन मेरा बलवन्त बना ।
शक्तिवान ना कोई मुझ-सम, इष्टाहारी पूर्ण बना ॥
लोकजनों के आगे मस्ती-चाल चले गर्वित होकर ।
भुजा दिखाता भौंह चढ़ाता, मोही अज्ञ जहाँ होकर ॥

ॐ ह्रीं श्री बलमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 27 ॥

बड़े-बड़े तप को तपने से, बना ऋद्धिधारी हूँ मैं ।
बड़े-बड़े वह अतिशयकारी, कार्य दिखाता भी हूँ मैं ॥
बुद्धि आदि जो ऋद्धि धारके, गर्वित-चित्त सदा होता ।
करे तिरस्कृत अगर जनों को, समदर्शी न कदा होता ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋद्धिमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 28 ॥

मास-मास का उपवासी मैं, बड़ा तपस्वी हूँ न्यारा ।
नियम धारता बड़ा-बड़ा हूँ, तप से ख्यात बना सारा ॥
वर्तमान में देखो मुझ-सम, नहीं तपस्वी है दिखता ।
ऐसा सोचे और किसी की, उन्नति को भी ना सहता ॥

ॐ ह्रीं श्री तपमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 29 ॥

सुडोल सुंदर मेरा तन यह, जग में शोभा पाता है ।
लगता नहीं दूसरा कोई, मेरे-सम जो भाता है ॥
मात्र देखते ही देखो सब, क्षण में मोहित होते हैं ।
धारे वपु-मद सोचे मुझ-सम, देव भी कुछ न होते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री रूपमद रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 30 ॥

सद्दर्शन से शुद्ध हुआ जो, ना पाता नर, पशुगति को ।
नरक, नपुंसक, नारी, दुष्कुल, विकल अंग, भवनत्रिक को ॥
अल्पआयु में दरिद्र कुल में, नहीं जन्म वह लेता है ।
वह तो सद्दर्शी इन्द्रों में, स्वर्गिक सुख पा लेता है ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टदुर्गति रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 31 ॥

मम आतम यह कभी यहाँ ना, किसी तरह भी अशुद्ध है ।
घर, दुकान वा खान-पान में, पूर्ण रही वह विशुद्ध है ॥
यह एकांती कहे आतमा, निश्चय इक ही नय माने ।
ना व्यवहार कथन करता है, नहीं अपेक्षा पहचाने ॥

ॐ ह्रीं श्री एकान्त मिथ्यात्व रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 32 ॥

जिन-आगम में कथित तत्त्व जो, उससे उल्टा जो जाने ।
स्त्री-मुक्ति, औ परिग्रही को, निज सच्चा गुरु पहचाने ॥
रहे केवली कवलाहारी, ऐसा जो जन कहते हैं ।
वे विपरीत रहे मिथ्यात्वी, ना जिनपथ को गहते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री विपरीत मिथ्यात्व रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 33 ॥

सद्दर्शन व ज्ञान चरण जो, कहे गये हैं जिनपथ में ।
मात्र एक से या सब से वह, मोक्ष मिले भी किस पथ में ?
कहाँ स्वर्ग है ? कहाँ नरक है ? कैसे जिनवर ने जाना ?
सोचे जो यह, मिले न दर्शन, संशय कर है दुख पाना ॥

ॐ ह्रीं श्री संशय मिथ्यात्व रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 34 ॥

कौन सत्य है मार्ग धर्म का, असत् मार्ग भी कौन रहा ?
नहीं शोधता अंध-बने-सम, जाने तो भी मौन रहा ॥
लोभी विषयी भयशाली वह, रागी-द्वेषी सब पूजे ।
दुर्गतियों से भय ना जिसको, नौग्रह सर्पादिक पूजे ॥

ॐ ह्रीं श्री ग्रह नक्षत्रादि उपासनारूप वैनयिक मिथ्यात्व रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३५ ॥

सभी पूज्य हैं, पुण्य मिलेगा, धन वैभव भी मिल जाए ।
हो मम रक्षा, यक्षादिक की, अतः शरण में वह जाए ॥
जिनवर कहते आतम को जो, पावन करता पुण्य रहा ।
वीतराग ही पूजो भैया, भजो न राग अपुण्य रहा ॥

ॐ ह्रीं श्री यक्षादिक पूजा रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 36 ॥

नहीं विचारे हित अथवा जो, अहित कहाँ पर होता है ।
हिंसादिक में धर्म मानता, विषयों में जो खोता है ॥
मोक्षमार्ग-सम हितकारी जो, सत्पथ छोड़े भटकाये ।
साधु बुलाते नहीं देखता, अज्ञानी जग-दुख पाये ॥

ॐ ह्रीं श्री अज्ञान मिथ्यात्व रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 37 ॥

अज्ञ अग्नि वा पेड़, भूमि, जल,वाहन, शस्त्र, नदी पूजे ।
पशु अरु पहाड़, सोना, चाँदी, हीरा, मोती जड़ पूजे ॥
मकान, तुला व दुकान पूजे,मति मिथ्या है जब होती ।
गुण-दोषों का चिंतन ना हो, मूढ़-आत्म दुख में खोती ॥

ॐ ह्रीं श्री अग्नि, वृक्ष, भूमि, वाहन, नदी, शस्त्रादि पूजा रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 38 ॥

जिन, मुनि, आगम, सम्यक्-लिंगी, वंदन के हैं योग्य रहे ।
सराग देवी-देव कुलिंगी, नमन विनय ना योग्य रहे ॥
सम्यग्दर्शी बनने हमको, आज नियम यह करना है ।
नहीं भजेंगे कभी सरागी, दृढ़-मन से जिन भजना है ॥

ॐ ह्रीं श्री सरागी श्रद्धा विरहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 39 ॥

पंच परम उन परमेष्ठी की, गहें सदा हम शरणों को ।
सदा विरागी परम पूज्य हैं, सराग छोड़ें शरणों को ॥
भय आशा अरु स्नेह लोभ से, कभी अनायतन न पूजें ।
मिथ्या-पथ तज बनें सुमार्गी, रत्नत्रय को नित पूजें ॥

ॐ ह्रीं श्री सरागी शरण रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 40 ॥

तीर्थंकर जिन सिद्ध प्रभु को, नमस्कार नित करते हैं ।
सम्यक्-लिंगी पंच परम उन, परमेष्ठी को नमते हैं ॥
मुनि, आचार्य व उपाध्याय गुरु साधु सुपद में गर्भित हैं ।
अर्हत् सिद्ध हैं देव परम वे, समकित-सुख से सुरभित हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरम गुरु श्रद्धा गुण सहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ 41 ॥

क्रोधादिक में क्षमा-भाव हो, वहाँ प्रशम-गुण माना है ।
भव-बंधन से भय का होना, संवेगी बन जाना है ॥
दुखी जीव में दया-भाव हो, अनुकंपा कहलाती है ।
जिन-वचनों में दृढ़ता होवे, आस्तिकता आ जाती है ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य गुण सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥42॥

मैं हूँ आतम चेतनवाला, दर्शन, ज्ञान-गुणी भवि-जन ।
भवसागर में भटका आया, घोर महा दुख सहा सुजन ॥
मोक्ष लाभ हो लक्ष्य हमारा, रत्नत्रय से मिले परम ।
अतः सरागी मोह-जाल तज, व्रत संयम तप करें धरम ॥

ॐ ह्रीं श्री सुलक्ष्य भाव सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥43॥

सद्दर्शन के योग्य आतमा, संज्ञी पंचेंद्रिय सुयोग ।
पर्याप्तक व विशुद्धि युक्त हो, जागृत साकार उपयोग ॥
चारों गति की भव्य आतमा, समकित के सम्मुख जब हो ।
पंच-लब्धि को प्राप्त करे वह, प्रकटित सद्दर्शन तब हो ॥

ॐ ह्रीं श्री सद्दर्शन लब्धि योग्य भाव सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥44॥

पूर्वोपार्जित कर्मपटल के, अनुभाग स्पर्धक जब वे ।
विशुद्धि द्वारा समय-समय हों, अनन्तगुणितहीन जब वे ॥
अरु उदीरणा प्राप्त कर्म वे, जैसी स्व स्थिति पाते हैं ।
प्रभु ने कही क्षयोपशम-लब्धि, जिसे भव्य अपनाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री क्षयोपशम लब्धि सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥45॥

लय-आर्जवसागर नाम...

पुण्य-कर्म के प्रकृति-बंध में, कहिए हेतु मंद कषाय ।
ऐसे शुभ भावों की मृदुता, जिन-मग में जो अघ नशाय ॥
होती यह मृदुता जब भवि के, वह उत्साही इस जग में ।
विशुद्धि-लब्धि वह पाय आत्मा, सुख अनुभव भी रग-रग में ॥

ॐ ह्रीं श्री विशुद्धि लब्धि सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥46॥

जिनवर से उपदिष्ट तत्त्व को, अमृत-सम जो पान करे ।
समझे अपना भाग्योदय वह, बन संतोषी-ध्यान करे ॥
सप्त तत्त्व व छहों द्रव्य अरु पदार्थ नौ का ज्ञान करे ।
भाग्यवान वह लब्धि देशना, पा गुरुवर गुणगान करे ॥

ॐ ह्रीं श्री देशना लब्धि सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥47॥

भविक विशुद्धिलब्धि के बल से, कर्म-शक्ति को क्षीण करे ।
जैसे पाला वृक्ष जलाये, अमृत व्याधि को हीन करे ॥
सत्तर कोड़ा-कोड़ी थिति भी, अंतः-कोड़ा-कोड़ी हो ।
उसी तरह अनुभाग क्षीण हो, प्रायोग्य-लब्धि जोड़ी हो ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रायोग लब्धि सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥48॥

जीवातम के अधःकरण वा, अपूर्व अनिवृत्ति परिणाम ।
होते हैं तब आतम निर्मल , अमलतर निर्मलतम जान ॥
नये-नये भावों से आतम, आगे-आगे निर्मल हो ।
सम्यग्दर्शन मिले आत्म जब, करण-लब्धि से परिमल हो ॥

ॐ ह्रीं श्री करण लब्धि सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥49॥

जहाँ विरागी देव साधु वा, श्रुत में सम्यक् श्रद्धा हो ।
वहाँ स्वत: ही सप्त-तत्त्व नव-पदार्थ में भी श्रद्धा हो ॥
इन सबको जो जानें निश-दिन, मुनि यदि निज-पर भेद जहाँ।
पावें निश्चय रत्नत्रय से, इक दिन केवल बोधि महा॥

ॐ ह्रीं श्री निश्चय रत्नत्रय सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥50॥

सप्त भयों से सहित आतमा, शिव-पथ में विचलित होवे।
कर्म-फलों का चिंतन जब हो, दृढ़ धर्मी वह भय खोवे॥
भय करने से आतम निश-दिन, शंकित मना धर्म में हो।
भय तज दो, अरु बनो निशंकित, अंकित मना शर्म में हो॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तभय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥51॥

नहीं नाश हों इष्ट वस्तुएँ, अनिष्ट वस्तु भी न मिलना ।
हो जाए विपरीत कार्य तो, मन फिर दुख में ही ढलना ॥
ऐसा भवि इह-लोक छोड़ भय, इष्ट अनिष्ट समागम में ।
राग, द्वेष को तजे निरंतर, सद्दर्शन की भावन में ॥

ॐ ह्रीं श्री इह लोक भय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥52॥

क्या गति होगी अगले भव में, कष्टों का अनुभव करना ।
नहीं मिली तो भोग-सम्पदा, तब जीवित कैसे रहना ॥
ऐसा हो पर-लोक जहाँ भय, व्याकुल होता वह दर्शी ।
अशुभ कर्म को बाँधे निश-दिन, तज दो भय, बन सद्दर्शी ॥

ॐ ह्रीं श्री परलोकभय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 53 ॥

नहीं वेदना मुझे कभी हो, नहीं रोग मुझ को आवे ।
रोग आय तो व्याकुल होवे, धर्म-भाव को ना भावे ॥
सदा निरोगी बना रहूँ मैं, रोगों से जो भय करता ।
नहीं विपाक कर्म का जाने, बँधें कर्म ना क्षय करता ॥

ॐ ह्रीं श्री वेदना भय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 54 ॥

शत्रु अज्ञ व हिंसक प्राणी, कब मेरे को विघ्न करें ।
नहीं सुरक्षा रहा अकेला, सोचे भय संलग्न रहे ॥
नहीं नष्ट हो शस्त्रादिक से, आत्म सदा अविनश्वर है ।
नहीं जानता मिथ्यादर्शी, जड़-पर्याय विनश्वर है ॥

ॐ ह्रीं श्री अरक्षाभय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 55 ॥

श्रद्धा ना है मन वच तन पर, ना पुरुषार्थी-पन जिसके ।
नहीं अडिग बन पाता वह जो, अगुप्ति भयता है उसके ॥
ना जाने कब विचलित होऊँ, मन,वच,तन की स्थिरता से ।
एकांत में हि बना मूढ़ जो, विघ्न सहें ना समता से ॥

ॐ ह्रीं श्री अगुप्ति भय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 56 ॥

मरण कभी ना होवे मेरा, रहे अमरता कायम यह ।
दशों प्राण की चिंता करता, ना धारे नित संयम वह ॥
अशरण भव का चिंतन ना हो, ना द्रव्यों की ध्रुवता का ।
पर्यायों में उलझा प्राणी, चिंतन करता भयता का ॥

ॐ ह्रीं श्री मरण भय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥57॥

सदा स्वस्थ ही रहा करूँ मैं, भोगों का अनुभव पाऊँ ।
बनी रहे यह भोग-सम्पदा, विरहित ना मैं हो पाऊँ ॥
वज्रपात उन भूकम्पों से, प्रकृति वायु सिंहादिक से ।
अज्ञानी को क्षण-क्षण भय हो, आकस्मिक घटनादिक से ॥

ॐ ह्रीं श्री आकस्मिक भय रहित दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥58॥

दोहा

उपशम दर्शन पाय वा, वेदक समकित धार।
अन्तिम क्षायिक धार के, हो जावे भव पार ॥

ॐ ह्रीं श्री उपशम, वेदक, क्षायिक भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥59॥

दशविध सम्यग्दर्शन अर्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

मेरे भगवन वीतराग हैं, हैं सर्वज्ञ व परमसुखी।
कहे भविक वह भले न जाने,-बड़े शास्त्र को बने सुखी॥
जिसे जिनाज्ञा सदाकाल उन-जिन भगवन की भाती है।
उसे प्राप्त हो आज्ञा समकित, जग में आत्म सुहाती है॥

ॐ ह्रीं श्री आज्ञा सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥60॥

दर्श-मोह का उपशम हो जब, बिना सुने भी शास्त्र वहाँ- ।
स्वत: मोक्ष का मार्ग रुचे फिर, ना रुचते रस वस्त्र वहाँ ॥

निज-आतम कल्याण वहीं है, दृढ़ता मन में आती है ।
तभी मार्ग वह समकित जानो, मति मिथ्या खो जाती है ॥

ॐ ह्रीं श्री मार्ग सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥61॥

भव्य आत्म जब महापुरुष उन, तीर्थंकर चक्री जन का ।
सुने कथानक बने विरागी, पाप-मैल हटता मन का ॥
रत्नत्रय अरु पुण्य-पाप के, फल को जानें बने सुखी ।
मिलता है उपदेश सुदर्शन, जग भविजन को करे सुखी ॥

ॐ ह्रीं श्री उपदेश सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥62॥

कहे गये आचार शास्त्र में, मुनियों के आचारों को ।
सुने तत्त्व पर श्रद्धा करता, तजता पाप विचारों को ॥
मंगलमय शुभ अनुष्ठान में, उत्साहित नित होता है ।
बने सूत्र समकितधारी वह, विधि-अंजन को धोता है ॥

ॐ ह्रीं श्री सूत्र सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥63॥

अगणित जीवादिक अथवा वह, गणितादि विषयों का ज्ञान ।
दुर्धर दुर्लभ होता जन को, पाते अल्प भवि वह ज्ञान ॥
भव्यातम को उनमें कुछ जो, होय बीज पदों का ज्ञान ।
दर्श-मोह का उपशम करते, वही बीज दर्श भवि जान ॥

ॐ ह्रीं श्री बीज सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥64॥

जो भव्यातम जीवादिक नौ, पदार्थ हि जाने संक्षेप ।
मात्र अल्प ही शास्त्र-बोध से, दर्श भवि धारें संक्षेप ॥

भव-भव के सु-प्राप्त धर्म का, सु-संस्कार है पहचानो ।
जिसे स्वल्प सुनकर ही पूरा, जैनधर्म रुचता जानो ॥

ॐ ह्रीं श्री संक्षेप सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥65॥

द्वादशाङ्ग को सुनता प्राणी, तत्त्वमार्ग श्रद्धानी हो ।
महा पुण्यशाली वह आतम, नहीं ज्ञान में मानी हो ॥
वह समकित विस्तार धारता, दर्शन शुद्ध बना जिसका ।
धन्य एक दिन द्वादशाङ्ग से, केवलबोध बने उसका ॥

ॐ ह्रीं श्री विस्तार सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥66॥

हो बड़ा हि क्षयोपशम जिसका, बिना शास्त्र सुने वह जीव ।
उसमें वर्णित किसी अर्थ से, तत्त्व-रुचि रखता वह जीव ॥
मात्र अर्थ में श्रद्धा से भवि, अर्थ सुदृष्टि कहलाता ।
मोक्ष-मार्ग में समकित जल से, निज चेतन को नहलाता ॥

ॐ ह्रीं श्री अर्थ सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥67॥

अंगों के सह अंग-बाह्य का, अवगाहन करके हि-जीव ।
द्वादशाङ्ग से पूर्ण बनें वे, दर्शविशुद्धि धारक जीव ॥
तभी मोक्ष-मग में है जानो, वह अवगाढ़ सु-दर्शन है ।
उसी सुदर्शन से भविजन को, होता शिवपद दर्शन है ॥

ॐ ह्रीं श्री अवगाढ़ सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥68॥

पूर्ण लोक वा अलोक झलके, जिनकी उत्तम आतम में ।
शान्त सर्वदर्शी भगवन् की, श्रेष्ठ सुरुचि जो आतम में ॥

सद्दर्शन परमावगाढ़ वह, कहा सु-आगम में जानो ।
केवलबोधि पाकर आतम, उसके सुख को पहचानो ॥

ॐ ह्रीं श्री परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन भेद सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥69॥

सद्दर्शन-सह-गुणस्थान जब, चतुर्थ संयम बिन होता ।
वहाँ आचरण अष्ट अंग का, उसके जीवन में होता ॥
वह सम्यक्त्वाचरण कहा है, कुंद-कुंद श्री गुरुवर ने ।
सद्दर्शन वा ज्ञान चरण ये, कहे मोक्षपथ जिनवर ने ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्त्वाचरण चारित्र सह दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥70॥

जयमाला

लय- गुरु ने जहाँ-जहाँ....

दर्शनधारी इन्द्र-सम्पदा, चक्री-पद के वैभव को ।
तीर्थंकर की बड़ी सम्पदा, और अंत में शिव-पद को ॥
प्राप्त करे वह सुलभ रूप से, धर्म सु-महिमा ज्ञात रहे ।
धर्म बिना सुख नहीं जगत् में, यही भावना साथ रहे ॥
जहाँ निरञ्जन पद मिलता फिर, क्या चक्री राजा का पद ।
स्वतः मिले वह इच्छा के बिन, चाहे तीर्थंकर का पद ॥
सम्यग्दर्शन की महिमा का, अनंत फल है पहचानो ।
उत्तम विधि से सम्यग्दर्शन-पा उसमें रमना जानो ॥
सम्यग्दर्शन निर्मल बनता, दृढ़ श्रद्धा से जिनपथ में ।
निःशंकादिक अष्ट गुणों का, पालन होता जिस मत में॥
वीतरागमय अर्हत् स्वामी, निर्दोषी वह जिनवाणी ।
मुनि निर्ग्रन्थ सदा सु-पूज्य हैं, कहे जैन यह जिनवाणी ॥
तीन लोक में, तीन काल में, सद्दर्शन-सा उपकारी ।
मिथ्यादर्शन-सा भी देखो, नहीं रहा है अपकारी ॥

इसीलिए हे! भविजन मेरे, मिथ्यादर्शन छोड़ो तुम ।
मोक्षमहल को पाना हो तो, सद्दर्शन अपनालो तुम ॥
वीतराग जिन तीर्थंकर ने, महा-सम्पदा हमको दी ।
रत्नत्रयमय धर्म-सम्पदा, किस कारण हमने खो दी ॥
विषय-सुखों को भोगा चिर से, छोड़ो, सुदर्श अपनाओ ।
मिथ्यातम को दूर हटाओ, सराग तज जिन-गुण गाओ ॥
जय-जय सम्यग्दर्शन जय हो! मम जीवन हे! प्राण-समा ।
जय-जय समकित दर्शन जय हो, सौख्य हेतु जिन-चरण-समा ॥
जय-जय हे! सम्यक्त्व सुमणि हे!-धर्माधार व शिवदर्पण ।
जय-जय सुदर्श पावन जीवन, शत-शत वंदन नित अर्पण ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥71॥

दोहा

सम्यग्दर्शन है जहाँ, वहाँ सुखद कल्याण।
सम्यग्दर्शन हो जहाँ, वहाँ सुखद सुध्यान॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै नमः।

•••

2. विनयसम्पन्नता भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- रोम-रोम से...

मोक्षमार्ग के साधन में जो, अर्हत् सिद्धाचार्य कहे ।
उपाध्याय सत् साधु और वे, जिन सुधर्म जिनशास्त्र कहे ॥

परम चैत्य अरु चैत्यालय भी, जग में सु-पूज्य कहलाते ।
श्रद्धा विनय करें जो इनकी, उत्तम सुख शिव को पाते ॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
भाव विनय सम्पन्न को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
विनय मुक्ति का द्वार है, मिलता शिव सुख जान।
विनय मुक्ति का गार है, फलता ध्रुव सुख मान॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

लय-धीरे-धीरे चलो जी मन्दिर.....

पालन उपगूहन आदिक का, व परमेष्ठी का गुणगान ।
भक्ति सुपूजन वीतराग की, शंकादि दोषों का हान ॥

जैसे प्रभु ने द्रव्यादिक का, दिया ज्ञान है हम सबको ।
दर्श-विनय का पालन करने, गहें उसी सम उन सबको ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शन विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 1 ॥

योग्य काल में नियमित होकर, शास्त्र व गुरु पूजन करके ।
ज्ञानार्जन को करना अरु गुरु शास्त्र नाम मंगल करके ॥
शब्दों का हो शुद्ध पठन वा, अर्थ शुद्ध भी पढ़ना हो ।
शब्द अर्थ हो शुद्ध वहाँ ही, ज्ञान-विनय को गहना हो ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञान विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

इन्द्रिय-विषयों को त्यागें वा, कषाय-भावों का उपशम ।
तीन गुप्तियाँ पंच समिति हों, होता कष्टों का उपशम ॥
समिति गुप्तियाँ कही गईं जो, माता-सम उपकारी हैं ।
चारित-विनयी बनें अष्ट प्र-वचन मात्रिकाधारी हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री चारित्र विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

उत्तर-गुण जो तप आदिक हैं, उनमें उत्साहित होना ।
सदा विजय पाना कष्टों में, सहन-शीलता ना खोना ॥
समता स्तुति वंदन प्रतिक्रम, प्रत्याख्यान व कायोत्सर्ग ।
तपो-विनय कारण इन सबमें, हानि का करना उत्सर्ग ॥

ॐ ह्रीं श्री तप विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

कायिक-वाचिक और मानसिक, विनय औपचारिक कहते ।
वही विनय प्रत्यक्ष अथवा, परोक्ष भी जिनवर कहते ॥

पालन जो प्रत्यक्ष विनय का, गुरु-सम्मुख हो यति कहते ।
पालन होय परोक्ष विनय का, सुदूर जब गुरुवर रहते ॥

ॐ ह्रीं श्री औपचारिक विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

संग रहित निर्ग्रन्थ साधु को, देख खड़े हो जाना जो ।
आगे जाकर आदर करना, हाथ जोड़ गुण गाना जो ॥
कायिक सु-विनय रही सदा वह, वंदन पूजन आदिक जो ।
राह चलें तब पीछे चलना, मिलें ज्ञान दर्शादिक वो ॥
भक्त खड़े हों गुरु से नीचे, वा पीछे चलते भविजन ।
पहले गुरु को आसन देते, नीचे बैठें वे बुधजन ॥
गुरु अनुकूल अंग-मर्दन वा, गुरु का कष्ट दूर करना ।
उपकरणों का प्रतिलेखन वा, गुरो-वचन पालन करना ॥

ॐ ह्रीं श्री कायिक विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 6 ॥

हित-मित पूजा, मधुर वचन से, गुरुवर का आदर करना ।
पाप रहित कोमल वचनों से, विनय सुगुरुकी नित करना ॥
कषाय मिश्रित नहीं बोलना, गृह-चर्चा भी ना करना ।
पर निंदा अरु तिरस्कार के, छोड़ वचन लघुता गहना ॥

ॐ ह्रीं श्री वाचिक विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 7 ॥

हिंसादिक उन पंच पापमय, सद्दर्शन से विरहित भी ।
उन भावों को त्यागें भवि नित, भाव रखें वे प्रिय हित ही ॥
धर्म-कार्य व सदुपकार में, मन को सुस्थिर वे करते ।
शुद्ध बोध व शुद्ध ध्यान में, लीन सदा वे भवि रहते ॥

ॐ ह्रीं श्री मानसिक विनय सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 8 ॥

नष्ट हुए हैं घातिकर्म जहँ, दर्श ज्ञान सुख शक्ति मिली।
अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया व, केवल ज्योति जिन्हें जगी ॥
शुभ हि परम औदारिक तन में, थित हैं शुद्ध परम आतम।
हैं अरिहंत जगत् परमेष्ठी, ध्यान योग्य हैं जो आतम ॥

ॐ ह्रीं श्री अरिहंत परमेष्ठी विनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

अष्ट कर्म तन नष्ट हुये हैं, लोकालोकी शुद्धातम।
जिस पर तन से शिव को पाया, पुरुषाकारी वह आतम ॥
सिद्ध परम परमेष्ठी ऊपर, लोक शिखर पर सदा रहें।
करो ध्यान हो कर्म निर्जरा, फिर गम देखो कहाँ रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठी विनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

दर्शन, ज्ञान प्रधान धारते, वीर्य चरित व तप आचार।
जिसमें रत हो स्वयं तथाहि, करवाते सबको आचार ॥
ऐसे हैं आचार्य मुनि वे, परमेष्ठी का रूप धरें।
करें ध्यान हम सदा योग्य उन, गुरुवर सम हि रूप वरें ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य परमेष्ठी विनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

जो रत्नत्रय युक्त रहें नित, धर्म उपदेश करें जन को।
वे मुनियों में उत्तम प्यारे, उपदेशक भाते जन को ॥
उपाध्याय उन परमेष्ठी को, नमन सभी का पूर्ण रहे।
ज्ञान गहें सब चारित पालें, मिले हि सुख सम्पूर्ण रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री उपाध्याय परमेष्ठी विनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

जो नित, बिन रागादि विशुद्ध, मोक्षमार्ग अनुकूल सदा।
दर्श ज्ञान से पूर्ण चरित को, साधे उत्तम सुखद मुदा॥
वह मुनि साधु परमेष्ठी है, उसको नमन हमारा है।
कर्मनाश हों शिवपथ चलकर, भव का मिले किनारा है॥

ॐ ह्रीं श्री साधु परमेष्ठी विनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

ऐसे अक्षय तीन लोक में, पूर्वाचार्यों ने हमको।
धर्मसुरथ को सम्यक्ता से, वर्ताने कारण जग को॥
भव्यों के सद्बोध हितार्थ, बहुत भेद में तत्त्व कहा।
जो धारेंगे इसे हृदय में, वे पावेंगे मोक्ष महा॥

ॐ ह्रीं श्री जिन धर्म सुविनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

स्वयं ध्वनित सब अंगों से वह, बिन बोले वाणी खिरती।
छत्रादिक वैभव सह वाणी, जयवन्ती सब दुःख हरती॥
ऐसे शिव कल्याण रूप सुख, के धाता जिन आतम को।
संज्ञानी जग व्याप्त सु-नायक, नमें सर्व अरहंतों को॥

ॐ ह्रीं श्री जिनश्रुत सुविनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

अहो धन्य! यह मूरत अतिशय, नहीं जगत् में कोई अन्य।
नहीं बना सकता यह मूरत, दर्शन से सब होते धन्य॥
नहीं निगाहें हटती जिन से, ऐसे जिनवर बड़े महान।
लोग हजारों आते नित ही, पुण्य खजाना भरें सु जान॥

ॐ ह्रीं श्री जिनचैत्य सुविनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

वीतराग वे जिनवर दिखते, वा सेवक सुर खड़े हुए।
सभी लोक जन इक टक देखें, सच रूपी ढंग लिये हुए॥
कैसे किसने इन्हें बनाया, तीन लोक के छवि से पूर।
नहीं निगाहें हटती जिनसे, न जायें हम इनसे दूर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनचैत्यालय सुविनय भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

महा शील अरु संयम तप से, निज आतम को जो ध्याते ।
ज्ञान तपों में लीन सदा वे, साधु संयमी कहलाते ॥
नहीं चाहते विषय-सुखों को, मिथ्यातम न छुए उन्हें ।
विनय करें उन वीतराग की, स्वार्थ-छोड़ व नमें उन्हें ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग यति प्रति निःस्वार्थ भाव सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥18 ॥

विनय न होती साधक में जब, नहीं तपों को तप सकता ।
गुरुवर के वह समक्ष सारे, दोषों को ना कह सकता ॥
ऐसा मानी वह साधक जो, अघ का बने खजाना है ।
क्या भक्ति है ? क्या मुक्ति है ?, कभी न उसने जाना है ॥

ॐ ह्रीं श्री निरभिमान गुण सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

कठोर भू पर पानी पड़ता, बने रुई समान कोमल।
बीज पड़े तो उसमें देती, नवीन, फिर वह पौधा फल॥
मानी प्राणी धर्म मार्दव, जल पाता कोमल बनता।
ध्यान-बीज से जिनवर पौधा, बन वह मुक्ति फल पाता॥

ॐ ह्रीं श्री नम्र गुण सह विनयसम्पन्नता भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

जयमाला

लय- स्वर्ग से सुन्दर...

सद्दर्शी के विनय भाव से, आगम बोध जहाँ मिलता।
सदाचार भी गुणी जनों में, सुखदा पूर्ण वहाँ खिलता॥
विनय मोक्ष का द्वार कहा है, जिसके बिन न धर्म मिले।
जहाँ विनय हो मोक्षमार्ग की, वहीं निजातम शर्म मिले॥
ज्ञानी की जब विनय न होती, विद्या वहाँ न रहती है ।
पुण्य पाप का ज्ञान नहीं हो, यह जिनवाणी कहती है ॥
भगवन् की हो वंदन पूजा, गुणीजनों में भक्ति रहे ।
विनय सुपूर्वक पढ़ें शास्त्र को, दुख से होती मुक्ति रहे ॥
दर्श ज्ञान आचरण अरु तप, औपचार है विनय रहीं ।
सम्यक् ये व्यवहार रूप हैं, पंच तरह की विनय कहीं ॥
इसी विनय में शेष भावना, स्वयं ग्रहण में आती हैं ।
भविजन को वे षोडस-कारण, मोक्षमहल पहुँचाती हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

दोहा

बन विनीत सुख धाम सह, तुझे मिलें गुणवान।
बन विनीत सुख नाम सह, तुझे मिलें गुणगान॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री विनयसम्पन्नता भावनायै नमः।

●●●

3. शीलव्रतेषु अनतिचार भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- चरणों में नमन हमारा...

हिंसादिक से विरक्त होकर, पांचों व्रत का पालन है।
पांचों व्रत में निरतिचार हों, वहीं शील का धारण है॥
दया, सत्य, अचौर्य शिवार्थी, ब्रह्मचर्य धर, संग तजे।
मुख्य फसल सम जानो अरु गुण, शिक्षाव्रत की बाढ़ सजे॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥

व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
निरतिचार व्रत शील को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
व्रत शीलों में भूलते, रहते भव में लीन।
व्रत शीलों में झूलते, रहते स्व में लीन॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य (ज्ञानोदय छन्द)

लय- भला किसी का कर न सको....

नव कोटी से राग, द्वेष सह, प्राणियों के प्राण विघात ।
नहीं करे जो, कही अहिंसा, हो जहाँ सु-धर्म प्रभात ॥
एकेंद्रिय के बिना त्रसों का, जहाँ घात है ना होता ।
जानो वहीं अहिंसाणुव्रत, का उत्तम पालन होता ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिंसाणुव्रत सम्पन्न शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1 ॥

अंग-छेदना और बाँधना, दंडादिक की पीड़ा दें ।
तथा शक्ति से अधिक भार भी, रखें उन्हीं को पीड़ा दें ॥
यथा समय पर अन्न-पान का, न देना रखना दुर्भाव ।
पंच कहे ये अतीचार तज, रख जीवों में करुणा-भाव ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिंसाणुव्रत पंचातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 2 ॥

जिन झूठे वचनों से देखो, जहाँ लोक जनों के बीच ।
जाय प्रतिष्ठा होय निंदा, व जावे कारागृह बीच ॥

मन वच तन आदिक से ऐसे, वचनों को ना कहता है ।
धर्मी पर संकटवाला वह, प्रकट सत्य न करता है ॥

ॐ ह्रीं श्री सत्याणुव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

अशुभ या निंदा वचन कहें व, रहस्य उद्घाटित करना ।
बुरे भाव रख झूठे लेखन, चुगली वा धन को हरना ॥
अतीचार ये सत्याणुव्रत-के जिनवर ने बतलाये ।
बने सत्यमार्गी तज इनको, आतम उत्तम गति पाये ॥

ॐ ह्रीं श्री सत्याणुव्रत पंचातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

जिसका स्वामी अन्य जीव हो, ऐसी पर की वस्तु कहीं ।
रखी, पड़ी हो भूली हो वह, अनुमति बिन लें वस्तु नहीं ॥
किसी दूसरे के प्राणों को, पीड़ा जिससे होती है ।
व्रतअचौर्य के पालन में वह, चोरी दुखमय होती है ॥

ॐ ह्रीं श्री अचौर्याणुव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

तीन योग से चोरी को जो, प्रोत्साहित नित करता है ।
चोरी का धन ले व राज्य के, नियम हि खंडित करता है ॥
नाप-तौल के बाटों में जो, कम बढ़ करता रहता है ।
असली में जो नकली चीजें-मिला दोष को गहता है ॥

ॐ ह्रीं श्री अचौर्याणुव्रत पंचातिचार दोष रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 6 ॥

जो पापभीरु अपनी स्त्री में, संतोषी बन रहता है ।
देख किसी दूजी अबला को, जो ना रागी बनता है ॥

चाहे वर से सहित रही हो, या वर से हि रहती दूर ।
बाल्य रही हो वृद्ध रही हो, रहता हि मन उनसे दूर ॥

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्याणुव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 7 ॥

बड़ी नारि को माता मानें, सम को समझें सहोदरी ।
अल्प उम्र वाली नारी को, पुत्री-सम या सहोदरी ॥
मानें, देखें नहीं राग से, कभी न दुर्व्यवहार करें ।
नारी भी सु पिता भाई सुत, सम माने व्यवहार करे ॥

ॐ ह्रीं श्री रागावलोकन रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 8 ॥

स्पर्शन औ रसना आदिक के, विषय रहे हैं रुचिकर जो ।
नहीं लुभाते जिनसे ज्ञानी, निज-रस लेते सुखकर जो ॥
ऐसे ज्ञानी महा आतमा, सदा शील के धारक हैं ।
कर्म-शत्रु को हरनेवाले, भव से सबके तारक हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री कामेन्द्रिय वश रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

रागी मन सह अबलाओं की, नहीं कथा जो सुनते हैं ।
तथा मनोहर अंगों का भी, नहीं निरीक्षण करते हैं ॥
पहले भोगे भोग सलोने, याद नहीं आवें जिनको ।
गरिष्ठ अथवा इष्ट सुरस में, नहीं राग जागे जिनको ॥

ॐ ह्रीं श्री कामकथाश्रवण, स्त्रीतनावलोकन, पूर्वभोगचिंता, गरिष्ठभोजन रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

मधुर गंध के पदार्थ अथवा, नश्वर तन की सुन्दरता ।
ना चाहूँ मैं राग-उपकरण, शय्यासन की कोमलता ॥
इस शरीर के लौकिक जितने, सुख के साधन झूठे हैं ।
समझें ज्ञानी शील-भाव-सह, भव-बंधन से छूटे हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री तनशृंगार, कोमलशय्या रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

दृढ़ धर्मी वह शीलवंत जो, ना महिला संसर्ग करे ।
जहाँ अकेली नारी हो तो, वहाँ नियम से मौन धरे ॥
भेद अठारह हजार जिसके, आगम में बतलाये हैं ।
चेतन-अचेतनादि रूप से, गहो शील गुण गाये हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टादश सहस्र भेद सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

अन्य गृहों का पाणिग्रहण हि, गृहि कराते, हो अतिचार ।
अयोग्य अंगों का सेवन वा, अशुभ वचन व अशुभाचार ॥
तीव्र रही है कामेच्छा वा, कुशील स्त्री का सम्पर्क ।
करता जो है सुशील ना है, अतिचार में नहीं सतर्क ॥

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्याणुव्रत पंचातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

निज गृह खेत व सोना चाँदी, धान्य पशुधन दासी दास ।
वस्त्र पात्र इन दशों परिग्रह, में हि हो जो स्वल्प उदास ॥
इनको परिमित करके इससे, आगे हि हो ममता त्याग ।
इसे कहा परिमाण परिग्रह, यही देशव्रती का त्याग ॥

ॐ ह्रीं श्री परिग्रहपरिमाणुव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

लोभ-भाव सहित परिग्रह के, सम्पादन में आकुलता।
अति तृष्णावश जीवराशि में, करुणापन जो ना पलता॥
अधिक काम लेना जीवों से, पदार्थ अति संग्रह करना।
अधिक खेद वा अधिक लोभ कर, अति भारारोपण करना॥
सुकृत सीमित परिग्रह है जो, उसको और बढ़ा लेना।
अथवा दो का एक बनाना, ऊपर रंग चढ़ा लेना॥
देख परिग्रह पर का उससे, मन में लालायित होना।
करें दोष ये संगविरत में, अतीचार से युत होना॥

ॐ ह्रीं श्री परिग्रहपरिमाणुव्रत पंचातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15॥

मैं जीवन भर इस सागर से, देश नदी वन पर्वत से ।
या इतने योजन से आगे, न जाऊँगा निज व्रत से ॥
सूक्ष्म पाप भी तजने आतम, जीवन भर दिग्व्रत धारे ।
दशों दिशाओं की सीमा कर, गमन आगमन आचारे ॥

ॐ ह्रीं श्री दिग्व्रत शीलरूप गुणव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 16॥

प्रमाद अथवा अज्ञ-भाव से, ऊपर तिर्यक् नीचे की ।
सीमा से आगे वह जाना, भूले सीमा पीछे की ॥
लोभ-भाव से क्षेत्र-वृद्धि भी-करते व्रत हो सातिचार ।
विस्मृत होती व्रत-पवित्रता, शुद्ध रहें न, तभी विचार ॥

ॐ ह्रीं श्री दिग्व्रत शीलरूप गुणव्रतातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 17॥

दिग्व्रत के भीतर भी देखो, नहीं प्रयोजन जिनसे है ।
ऐसे पाप सहित योगों को, तजें दुख्ख हो जिनसे है ॥

उसे कहा अनर्थदण्डव्रत, आत्मजयी तीर्थंकर ने ।
करें सदा हम शुभाचार वह, जिसे कहा तीर्थंकर ने ॥

ॐ ह्रीं श्री अनर्थदण्डविरतिव्रतशीलरूप गुणव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

जीवों को संक्लेश करे जो-क्रिया व हिंसा व्यापारी ।
कृषि आदिक आरंभी हिंसा, और रही मायाचारी ॥
इन सबको करने की शिक्षा - दे पापोपदेश जानो ।
कहते प्रथम अनर्थदण्ड जिन, पाप-कर्म जिसको मानो ॥

ॐ ह्रीं श्री पापोपदेश अनर्थदण्डविरतिव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

विष फरसा तलवार कुदारी, अग्नि शस्त्र या साँकल हो ।
ये सब हैं हिंसा के कारण, आज नहीं भी तो कल हों ॥
अज्ञ नहीं यह विचार करता, अरु दे इनका दान उसे- ।
पाप-बंध में कारण जानो, कहते हिंसादान जिसे ॥

ॐ ह्रीं श्री हिंसादान अनर्थदण्डविरतिव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

किसी दूसरे का वध हो या, बंधन में वह बँध जाये ।
छेदन-भेदन आदिक होवे, दुख में ही वह रँग जाये ॥
ऐसा चिंतन करता मोही, या नारी का रागी हो।
होय अपध्यानी प्राणी तो, पापों का वह भागी हो॥

ॐ ह्रीं श्री अपध्यान अनर्थदण्डविरतिव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

कृषि आदिक आरंभ परिग्रह, वा आश्चर्य रु मिथ्यापन ।
राग-द्वेष अरु अहंकार व, जिससे जागे कामीपन ॥

ऐसे मन को कलुषित करने-वाले शास्त्रों का पढ़ना ।
अथवा सुनना दु:श्रुति है जो, पाप बँधे दुख में पड़ना ॥

ॐ ह्रीं श्री दु:श्रुति अनर्थदण्डविरतिव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 22 ॥

व्यर्थ भूमि पर गड्ढा करना, पानी को है बिखराना ।
आग जलाना, वायु रोकना, वनस्पती को कटवाना ॥
छिन्न-भिन्न भी करना उसको, व्यर्थ हि चलना-चलवाना ।
यही रही है प्रमादचर्या, अनर्थदण्डी कहलाना ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रमादचर्या अनर्थदण्डविरतिव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 23 ॥

रागभरे भद्दे वचनों का, और कुचेष्टा करने का ।
बहुत बोलने, भोगादिक की-अधिक वस्तुएँ रखने का ॥
तथा विचारे बिना किसी भी, कार्य शीघ्र वह करने का ।
अतीचार है अत: छोड़ना, यत्न रहे शिव भजने का ॥

ॐ ह्रीं श्री अनर्थदण्डविरतिव्रत अतिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 24 ॥

इच्छाओं की सीमा बाँधी, उसके भीतर भी उनमें ।
विषय राग को कृश करने वे, भोग उपभोग रहे उनमें - ॥
नियम व यम धारें व्रत भविजन, विषयों को सीमित करते ।
वे भोगोपभोग की सीमा-का व्रत पालन हैं करते ॥

ॐ ह्रीं श्री भोगोपभोग परिमाण व्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 25 ॥

विषय-विषों का आदर करना, या उनको हि स्मृत करना ।
वर्तमान में लम्पटता रख, आगे हों तृष्णा रखना ॥

वर्तमान के विषय-भोग को, सुखासक्ति से भोगे जो ।
भोगोपभोग-सीमा व्रत के, अतीचार सह होवे वो ॥

ॐ ह्रीं श्री भोगोपभोग परिमाण व्रत अतिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 26 ॥

अणूव्रती सु श्रावक जन का, वर्ष मास आदिक सह वह ।
क्षेत्रादिक में सीमा करना, पाप छोड़ भावन-सह वह ॥
देशावकाशिक जाने व्रत जु, उत्तम शुभमय है माना ।
सीमा से आगे अपाप हो, अतः महाव्रत-सम माना ॥

ॐ ह्रीं श्री देशावकाशिक शिक्षा व्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 27 ॥

निज सीमा से बाहर भेजें, या खाँसी आदिक से जो ।
शब्द करें व वस्तु मँगायें, बहिर् ग्राम आदिक से जो ॥
सीमा बाहर रूप दिखाना, कंकड़-पत्थर पत्रादिक- ।
क्षेपण करना अतीचार है, बँधें पाप, हों दुख्खादिक ॥

ॐ ह्रीं श्री देशावकाशिक शिक्षा व्रत अतिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 28 ॥

पूर्णरूप से पंच पाप का, त्याग करें मन वच तन से ।
छोड़ राग रु द्वेष को करते- चिंतन शिव का चेतन से ॥
पद्मासन हो जिनवर-सम या, खड्गासन से ध्यान करें ।
दुख्ख रूप यह नश्वर भव है, सामायिक में ध्यान करें ॥

ॐ ह्रीं श्री सामायिक शिक्षाव्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 29 ॥

मन वच तन की अशुभ प्रवृत्ति, सामायिक में जब होती ।
उत्साहित भी ना होना वा, विस्मृति भी है जब होती ॥

ऐसे पंच दोष जिन्हें तज, परमेष्ठी का ध्यान करें ।
शुभ भावों-सह सदा विरागी, जिनबिम्बों का ध्यान करें ॥

ॐ ह्रीं श्री सामायिक शिक्षाव्रतातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 30 ॥

सदा अष्टमी चतुर्दशी में, जो जन चतुराहार तजें ।
प्रोषध-सह उपवास करें भवि, विषय-राग परिहार करें ॥
यथाशक्ति-सह नियम धारते, भोज्य-विषय के त्यागी वे ।
हिंसा, श्रृंगारों को तजते, धर्मामृत के रागी वे ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 31 ॥

निज मन की कमजोरीवश वे, बिन देखे शोधे, जन जो ।
धर्म-उपकरण गहें रखें वा-मल आदि का विसर्जन जो- ॥
करते हैं, जो संस्तर को भी, जहाँ बिछाते बिन शोधे ।
आदर ना हो. विस्मृति भी हो, धर्म-मार्ग में ना शोभे ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रोषधोपवास शिक्षा व्रतातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 32 ॥

आहारादिक चार दान दे, करते वैयावृत्त्य सुजन।
व्रत संयमधारी की सेवा, स्वार्थ-भाव तज करें सुजन॥
भव-वांछा को तजते, रखते-भावन रत्नत्रय पद की।
सदा अतिथि-संभाग करें वे, हो उपलब्धि शिव-पद की॥

ॐ ह्रीं श्री अतिथिसंविभाग शिक्षा व्रत सह शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 33 ॥

परमेष्ठी की सेवा कर भवि, यदि अतिचार कभी करते ।
सेवा उनकी रहे अधूरी, व्रत शुचिता को ना गहते ॥

ढकें द्रव्य को हरित वस्तु से, हरित वस्तु पर रखना भी ।
योग्य वस्तु में दोष उपजता, तथा अनादर करना भी ॥

ॐ ह्रीं श्री अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रतातिचार रहित शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 34 ॥

जयमाला

लय- भला किसी का कर न सको तो.......

स्पर्शनेन्द्रिय तथा रसन ये, कामेंद्रिय हैं कहलातीं ।
इन दोनों के वश ना होना, ये विषयों में रस पातीं ॥
इनको जीते जो वह उत्तम, शीलवान माना जाता ।
सुखद स्पर्श व मधुर रसों में, मन को ना वह ले जाता ॥
हजारों नारि से रावण की, नहीं तृप्ति इच्छा-ज्वाला ।
तब तो सीता से मोहित हो, छलकर उसने हर डाला ॥
फिर क्या मानव की कामाग्नि, तृप्त कभी हो सकती है ?
चाहे कितना ईंधन डालो, अग्नि क्या बुझ सकती है ? ॥
अरे! स्वर्ग में सुन्दर-सुन्दर, ललनाओं को प्राप्त किया ।
राजाओं की भोग-सम्पदा, का अनुभव भी प्राप्त किया ॥
विषय-सुखों से राग न छूटा, नया-नया जीवन पाया ।
नया जानकर उसको भोगा, नहीं विरागी बन पाया ॥
इसीलिए हे प्रियजन मेरे, विषय-सुखों को त्यागो तुम ।
कर्म-बंध से बचना हो तो, शीलवान बन जागो तुम ॥
षोडसकारण, दशलक्षण वा, व्रत अष्टाह्निक धारो तुम ।
बहु उपवासों से कर्मों को-काटो शिव-पद धारो तुम ॥

ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 35 ॥

शील रहित उसको कहाँ, कब मिलता है मोक्ष।
शील सहित उसको वहाँ, तब मिलता है मोक्ष॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री शीलव्रतेष्वनतिचार भावनायै नमः।

•••

4. अभीक्षण-ज्ञानोपयोग भावना

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- आदिम तीर्थंकर प्रभो....

परमपूज्य वा वीतराग-जिन, मुनीश्वरों से कहा हुआ ।
नहीं स्वार्थ से, अनेकांत से, अनुयोगों से बँधा हुआ ॥
ज्ञान श्रेष्ठ जो मोक्षमार्ग में, हम सबका उपकार करे ।
पाप भगाये समता लाये, अतः जगत् जयकार करे ॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥

राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥

राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
सदा ज्ञान उपयोग को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
राग ज्ञान भव का रहे, जानो भवि है मूल।
त्याग ज्ञान शिव का रहे, मानो भवि है मूल॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- प्यारे-प्यारे गुरुवर मेरे.....

इन्द्रिया-निन्द्रिय के निमित्त से, होता जिससे ज्ञान जहाँ।
अवग्रादिक भेद सहित हो, बहु, बहुविध का ज्ञान वहाँ॥
तीन शतक छत्तीस भेद इस, मतिज्ञान के कहलाते।
मति सां-व्यवहारिक प्रत्यक्ष, ज्ञान रहा यह गुण गाते॥

ॐ ह्रीं श्री मतिज्ञान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1॥

श्रुतज्ञान जो मतिज्ञान का, आलम्बन लेकर जाने।
मतिज्ञान से ज्ञात वस्तु को, जो गहराई से जाने॥
श्रुतज्ञान वह मतिज्ञान से, विशेष होता पहिचानो।
आगम-श्रुत संज्ञी भव्यों को, मात्र मिले यह भवि मानो॥

ॐ ह्रीं श्री श्रुतज्ञान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

द्रव्य क्षेत्र व काल भाव की, मर्यादा रख आतम से।
जाने इन्द्रिय बिन सहाय के, रूपी द्रव्यों को निज से॥
चारों गति में अवधिज्ञान वह, दूर परोक्ष वस्तुओं का।
ज्ञान कराता षड् भेदों सह, लोक मात्र के पुद्गल का॥

ॐ ह्रीं श्री अवधिज्ञान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

पर मन थित रूपी विषयक, पदार्थ जाने ऐसा ज्ञान।
कहा प्रभो ने मनपर्यय वह, रहा अतिन्द्रिय सम्यग्ज्ञान॥
ऋजु तथा वह विपुलमति सह, होता है इन भेद सहित।
द्रव्यादि के मर्यादा सह, जाने मुनि वे, करता हित॥ 4 ॥

ॐ ह्रीं श्री मनःपर्यय ज्ञान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

चार घातिया कर्मों के क्षय, से होता है ऐसा ज्ञान।
इन्द्रिय की वह सहायता बिन, पूर्ण विश्व को जाने ज्ञान॥
निज आतम से सर्वद्रव्य के, गुण अनन्त पर्यायों को।
युगपत् एक काल में जाने, केवलज्ञान नमन् जिसको॥

ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञान गुण सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय रु, कहा ज्ञान-केवल जानो ।
कहे तत्त्व जो आगम में हैं, रहा विषय उसका मानो ॥
आत्मबोध से तत्त्व विषय का, चिन्तन मन्थन जब होता ।
वहाँ आचरण से कर्मों का, बंधन ढीला तब होता ॥

ॐ ह्रीं श्री मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

मुनियों से जब कहे तत्त्व को, प्राणी रुचि से पान करे ।
चारित-पथ पर चले सदा वह, भक्ति, सु-पूजा, दान करे ॥
निश्चित ही वह भव्य रहा है, शीलवान समकितधारी ।
तीन लोक से पूज्य बनेगा, तथा मोक्ष का अधिकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानामृत पान सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

मन यह मानव का बंदर-सम, उछल-कूद जो करता है ।
पल-पल में वह विषय-राग में-भाग, धर्म को तजता है ॥
अतः सदा जो सम्यक् श्रुत के-ज्ञानार्जन में लीन रहे ।
मन-मर्कट को वश में करके, सदा सुखी स्वाधीन रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री मनवशीकरण समर्थाय अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥8॥

चर्म-चक्षु हैं नहीं काम के, जहाँ ज्ञान के चक्षु नहीं ।
जिनके रहते ज्ञान-चक्षु वे, समीचीन है चक्षु वही ॥
अन्तर्चक्षु बने ज्ञानी वह, ज्ञान-आवरण भग जाता ।
मेघ रहित उस सूर्य की भाँति, केवलबोध सु जग जाता ॥

ॐ ह्रीं श्री अन्तर्चक्षु सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥9॥

माँ जिनवाणी की अर्चा वा,चर्चा भी हम खूब करें ।
पर जिनवाणी से जनवाणी, कोसों ही सब दूर रखें ॥
उसी तरह धन की आशा से, न मिथ्यात्व प्रचार करें ।
देख किसी के बढ़े ज्ञान में, ना मात्सर्य विचार करें ॥

ॐ ह्रीं श्री धनाशा मिथ्यात्व प्रचार रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

जहाँ ज्ञान में मान नहीं है, रही ज्ञान की शोभा वह।
चारित उज्ज्वल, मन पवित्र हो, बढ़े शास्त्र की सेवा वह ॥
कहाँ रहे वे गौतम जैसे, झुके वीर के चरणन में।
मान मिटाकर समवसरण में, ज्येष्ठ बने वे मुनिगण में ॥

ॐ ह्रीं श्री मान कषाय रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

(दोहा)

जहाँ नष्ट हों इष्ट वे, पदार्थ या हों दूर।
कहाँ मिलेंगे खेद यह, इष्ट वियोगी पूर ॥

ॐ ह्रीं श्री इष्टवियोग आर्त्तध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

जहाँ अनिष्ट पदार्थ के, हट जाने का भाव।
अनिष्ट संयोगी बने, मिलता नहीं स्वभाव ॥

ॐ ह्रीं श्री अनिष्टसंयोग आर्त्तध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

तन की पीड़ा होय जब, रोगादिक हों मान।
रोग-भूख आदिक मिटें, पीड़ा चिन्तन ध्यान ॥

ॐ ह्रीं श्री पीड़ा चिंतवन आर्त्तध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

इन्द्रादिक की सम्पदा, इन्द्रिय के वे भोग।
आगे हमको प्राप्त हों, यही निदान प्रयोग ॥

ॐ ह्रीं श्री निदान आर्त्तध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

जहाँ जीव का घात हो, ऐसा कार्य सहर्ष।
करना हिंसानंद है, जीवन ना आदर्श॥

ॐ ह्रीं श्री हिंसानन्द रौद्रध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

झूठ वचन जो पाप हैं, उनका जहाँ प्रयोग।
मृषानन्द वह ध्यान है, शुद्ध न हो उपयोग॥

ॐ ह्रीं श्री मृषानन्द रौद्रध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

पर पदार्थ का हो हरण, छल कपटी मन होय।
चौर्यानन्दी ध्यान है, दुर्गति में गम जोय॥

ॐ ह्रीं श्री चौर्यानन्द रौद्रध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

इच्छाओं का जाल जो, बुने संग का भार।
परिग्रहानंदी बने, नारक दुख्ख मझार॥

ॐ ह्रीं श्री परिग्रहानन्द रौद्रध्यान रहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

वीतराग की देशना, द्रव्य, तत्त्व उपदेश।
रत्नत्रय मय मोक्ष मग, गहें मान आदेश ॥

ॐ ह्रीं श्री आज्ञाविचय धर्मध्यान सहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

दुख मय यह संसार है, कुदर्श पाँचों पाप।
छोड़ें यही अपाय है, ध्यानी दें जिन जाप॥

ॐ ह्रीं श्री अपायविचय धर्मध्यान सहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

कर्मों का जो पाक फल, भव सुख, दुख दे जान।
लख चौरासी योनि में, चउगति भ्रमत अजान॥

ॐ ह्रीं श्री विपाकविचय धर्मध्यान सहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 22 ॥

तीन लोक का सब गणित, शुद्ध द्रव्य उपयोग।
मुनि संस्थान विचय करें, ध्यान रहा सद्योग॥

ॐ ह्रीं श्री संस्थानविचय धर्मध्यान सहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 23 ॥

पाँच व्रतों की भावना, पाँच-पाँच पहिचान।
दर्शन विशुद्धि आदि भी, सोलह भावन मान॥

ॐ ह्रीं श्री पंचविंशति व षोडस भावन चिंतवन सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 24 ॥

अनित्य आदिक भावना, बारह भावन जान।
शास्त्राभ्यास जिन स्तुति, आदिक सात सु-मान॥

ॐ ह्रीं श्री अनित्यादिक द्वादश, शास्त्राभ्यासादि सप्त भावन चिंतवन सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 25 ॥

मैत्री प्रमोद भावना, करुणा भी शुभ रूप।
मध्यस्थी चौथी रही, मोक्षमार्ग अनुरूप॥

ॐ ह्रीं श्री मैत्री, प्रमोदादि चतुः भावन चिंतवन सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 26 ॥

समदर्शन व ज्ञान व्रत, रत्नत्रय हैं जान।
संवेग रु वैराग्य भी, शुभ भावन पहिचान॥

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रय व संवेग, वैराग्य भावन सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 27 ॥

आत्म तत्त्व की भावना, एक भावना नेक।
शिवसुख की ये भावना, करे आत्म अभिषेक॥

ॐ ह्रीं श्री आत्म तत्त्व भावना सह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 28 ॥

जयमाला

लय : हे गुरुवर धन्य हो तुम........

ज्ञान बिना इस जग में उत्तम, नहीं दूसरा साधन है ।
यह अच्छा यह बुरा आचरण, कहे ज्ञान जो पावन है ॥
समीचीन सु-ज्ञान, जीव को, मोह-तिमिर से दूर करे ।
अमृत-सम वह ज्ञान समझ लो, आत्म-सुखों से पूर्ण करे॥
सारे जीवन शास्त्र पढ़े हों, तथा ज्ञान की चर्चा की ।
चर्चा करते जीवन बीता, नहीं आचरण अर्चा की ॥
ज्ञानी जिसने जिनवाणी के, मर्म को न पहचाना है ।
गंध रहित जो पुष्प-समा अरु, नहीं प्रशंसित माना है ॥
रही भावना पुण्य-पाप की, विराग, रागों की जननी ।
रही भावना स्वर्ग, मोक्ष या, भव-दु:खों की है भरनी ॥
जहाँ धर्म है वही भावना, जग में उत्तम मानी है ।
ज्ञानी समझो, मोह हटाओ, मिले मोक्ष-रजधानी है ॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 29 ॥

ज्ञानी जग में दें जहाँ, क्षमता सुख वे पूर।
ज्ञानी मग में दें वहाँ, समता सुख भी पूर॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावनायै नमः।

●●●

5. अभीक्ष्ण-संवेग भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

डरा भव्य जो भवसागर से, ना विषयों से राग करे।
सदा धर्म की छाया में वह, भव-वांछा का त्याग करे॥
नहीं कभी फिर पंच तरह के, भव-परिवर्तन यहाँ करे।
धन्य! वही संवेग-भावना, से आत्मिक-सुख लहा करे ॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

लय- जीवन है पानी की बूँद...

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥

संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्यं ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
सदा जगत संवेग को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
संवेगी बन जाय जो, वो जाये भव पार।
संवेगी बन भाय जो, वो पाये शिव गार॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- दुनिया में गुरु हजारों.....

तीन लोक में कहाँ कौन है, कैसे सुख-दुख मिले- यहाँ ?
किस करनी का क्या फल होता, कैसे शिव-पद मिले यहाँ ?
जगत्-रूप का ऐसा चिंतन, जब भविजन नित करते हैं ।
वे ही इस संवेग भावना-से भवसागर तिरते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री संसार भीरुतामय अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1 ॥

भव में जीवों के इन्द्रिय सुख, तथा दुख्ख भी जहाँ कहे।
मात्र वासना भ्रममय वे सब, पूर्ण जगत् में यहाँ रहे॥
इन्द्रिय सुख के भोग सभी वे, आपत्ति के उस क्षण में।
रोगों के सम व्याकुल करते, दुख देते हैं पल-पल में॥

ॐ ह्रीं श्री इन्द्रिय-सुख दुखमय भाव सह अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

तन, गृह, धन, महिलायें ये सब, पुत्र, मित्र व शत्रु सभी।
रहें हमेशा अन्य स्वभावी, मोही अपने कहे सभी॥
आँखों से दिखने वाले सब, पदार्थ पुद्गलमय जानो।
नहीं दिखे आतम जो अपनी, स्व स्वभाव उसमें जानो॥

ॐ ह्रीं श्री पर पदार्थ मोह भाव रहित अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

अपने अपकारक के ऊपर, क्रोध करें तो व्यर्थ रहा।
क्योंकि अपकारक वह अपना, अहित करे यह अर्थ रहा॥
जहाँ फावड़े से भू खोदे, वहाँ स्वयं जो झुकता है।
दण्डे से वह नीचे ऊपर, होता दुख को सहता है॥

ॐ ह्रीं श्री अतिक्रोध कषाय दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

संसारी यह प्राणी जग में, चिरकालों से अज्ञानी।
घूम रहा चारों गतियों में, ऐसा कहते हैं ज्ञानी॥
दो रस्सी के जहाँ योग से, यथा मथानी फिरती है।
भव में भटके राग-द्वेष से, आतम दुख में पड़ती है॥

ॐ ह्रीं श्री राग-द्वेष रूप दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

भव रूपी जिस घटी यन्त्र में, घरियाँ भरती, खाली हों।
इसी तरह से भव विपत्तियाँ, फिर-फिर आने वाली हों॥
एक आपदा पूर्ण नहीं हो-पाती दूजी आती है।
एक करे वह दुखी आपदा, दूजी फिर उलझाती है॥

ॐ ह्रीं श्री अनेक विपत्तिमय भव दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

अति कठनाई से अर्जित हों, तथा सुरक्षित न रहते।
नश्वर हैं वे धन पुत्रादिक, फिर जो इनको सुख कहते॥
घृत को पीकर ज्वर से पीड़ित, जैसे मानव मूढ़ रहा।
अज्ञानी वह कहलाता है, धन में जो सुख ढूढ़ रहा॥

ॐ ह्रीं श्री अतिधनार्जन दुखमय भाव भीरूतायै सह अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

भरा मृगादिक जीवों से वन, महा आग से झुलस रहा।
उस ही वन में तरु पर बैठा, देख दृश्य जो मनुष रहा॥
कितना मूर्ख रहा वह प्राणी, देख विपत्ती दूजे की।
अपनी भी ना समझे आपद, राह ये दुख नतीजे की॥

ॐ ह्रीं श्री पर जीव दुख दृष्टवा भव भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

समय बीतना आयु क्षय अरु, धन के बढ़ने का कारण।
लोभी सोचे काल बीतना, ब्याज वृद्धि का है साधन॥
किन्तु वह ना विचार करता, निज जीवन घट जायेगा।
जीवन से भी अधिक इष्ट धन, किन्तु साथ न जायेगा॥

ॐ ह्रीं श्री अतिलोभ रूप कषाय दुख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

निर्धन प्राणी दान, पुण्य के, कारण धन संचय करता।
मैं स्नान करूँगा ऐसा, सोच पंक लेपन करता॥
धन अर्जन में पञ्च पाप अरु, आरम्भादिक होते हैं।
धर्म हेतु जन धन अर्जनकर, बुद्धिवन्त न होते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री आरम्भादिक पाप रूप दुख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 10॥

नित्य, इतर निगोद व पृथ्वी, जल, अग्नि अरु वायुकाय।
सात-सात हैं लाख योनि व, दस हैं लाख वनस्पतिकाय॥
द्वि,त्रि और चार इन्द्रिय की, दो-दो लाख योनि कहिए।
सुर, नारक व पशु की चउ चउ-लख, नर चौदह लख कहिए॥

ॐ ह्रीं श्री चतुरशीती योनि दुःख विरक्तायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 11॥

जीव अकेला कर्म बंध कर, चिर एकाकी भव भ्रमता।
जन्म अकेला मरण अकेला, स्वयं कर्म फल को भरता॥
नहीं अन्य उसके कर्मों को, टाल कभी भी सकता है।
नहीं बाँटने से दुःख बँटता, अटल हि कर्म व्यवस्था है॥

ॐ ह्रीं श्री जन्म मरण दुःख विरक्तायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 12॥

भोग प्रथम संताप देयँ रु, मिलने पर तृष्णा बढ़ती।
तथा अंत में कठनाई से, छूटें, अग्नि-सी जलती॥
ऐसे विषय-भोग को रुचि से, कैसे? कोई ज्ञानी वह।
सेवेगा; फिर बुद्धिवन्त ना, दुःख पाये अज्ञानी वह॥

ॐ ह्रीं श्री विषय भोग रूप दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 13॥

जिसकी संगत पाकर पावन, पदार्थ अशुचि होते हैं।
जिस तन में वे क्षुधा, तृषा सब, दुख भी पैदा होते हैं॥
ऐसे तन को खिला, पिलाकर, पुष्ट जहाँ यह तन करना।
व्यर्थ भोग वे सुख सुविधाएँ-देकर, कर्मों से बंधना॥

ॐ ह्रीं श्री अपवित्र शरीर स्वरूप दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 14॥

आतम का उपकारक जो है, तन का वह अपकारक हो।
तन का उपकारक जो कारज, आतम का अपकारक हो॥
भोग रहे तन के उपकारक, तप जिय के उपकारक हो।
तन सुख कर्म बंध देता अरु, चेतन सुख शिव कारक हो॥

ॐ ह्रीं श्री स्वपर भेद विज्ञानाय अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15॥

एक तरफ तो दिव्य रत्न शिव, चिन्तामणि शुभ मिलता है।
और दूसरी ओर खली का, टुकड़ा भव सुख मिलता है॥
ये दोनों फल ध्यानों द्वारा, जीवों को फिर मिलते हैं।
ज्ञानी भव न, शिव सुख चाहे, अनन्त सुख-दल खिलते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री प्रशस्त ध्यान सिद्धिकराय अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 16॥

पुद्‌गल परिभ्रमण में देखो, एक जीव ने भव-भव में।
सर्व पुद्‌गलों को भोगा है, अरु छोड़ा है भव-भव में॥
अनन्त जन्मों से अनुभव कर, जिन द्रव्यों को छोड़ा था।
उनको ही फिर अपने तन से, बार-बार है जोड़ा था॥

ॐ ह्रीं श्री द्रव्यादि पंच परावर्तन भव दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 17॥

मिथ्यातम का उदय होय जब, मिथ्यादर्शी अज्ञानी।
जिनभाषित, जिनधर्म मार्ग की, निंदा करता है प्राणी॥
रागी, हिंसक कुधर्म को वा, मिथ्याभेषी कुलिङ्ग को।
माने, नमता भव में भ्रमता, ना माने वह सुलिङ्ग को॥

ॐ ह्रीं श्री मिथ्यात्व पाप दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥18॥

संग सहित संसारी जन को, मिलन, वियोग सभी होते।
लाभ नाश भी हो पदार्थ का, जिससे सुख-दुख भी होते॥
मान तथा अपमान मिले वा, भोगों में नित आकुलता।
होती कर्मोदय से जग में, शिव में रहे निराकुलता॥

ॐ ह्रीं श्री आकुलता सह भव दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥19॥

बहु दोषों की तरंग व जहँ, दुःख रूपी हैं जलचर जीव।
ऐसे जन्म मृत्यु सागर में, सदा भ्रमण है करता जीव॥
जिसका कारण कर्मास्रव है, जिसे न लखता अज्ञानी।
पाप कर्म से धर्म-मार्ग को, ना पाता कहते ज्ञानी॥

ॐ ह्रीं श्री कर्मास्रव रूप भव दुःख भीरूतायै अभीक्ष्ण संवेग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

जयमाला

लय- गुरु ने जहाँ-जहाँ.......

भव में जितने विषय-सुखों के, उत्तम-उत्तम साधन हैं ।
वे प्राणी को सदा दुःखमय, कर्म-बंध के कारण है ॥
क्षणिक सुखों की आशाओं से, जिसमें प्राणी लीन रहे ।
भव-दुःखों के पंथों से भवि, भयशाली स्वाधीन रहे ॥

सारा जग निर्भय कहलाता, मुनिवर भय के धारी हैं।
संसारी को भय न पाप का, मुनिवर भव के त्यागी हैं॥
जो जग में भव का त्यागी हो, उसको विषयों से भय हो।
जंगल मंदिर में रहते मुनि, संसारी वह घर में हो ॥
नहीं कहीं भी मुनिवर लौकिक- कार्य करो यह भाव रखें ।
मुनि वे सम्यक् ध्यान बोध में, स्वयं नित्य शुभ-भाव रखें ॥
धर्म स्थल की करो सजावट, गृह व बावड़ी बनवाओ ।
हिंसा के वह वचन कहें ना, वृक्ष घास ये कटवाओ ॥
जो यति संग-परिग्रह का जब, कर्त्ता-धर्त्ता है बनता ।
हिंसाओं में आरंभों में, उलझे अघकर्ता बनता ॥
अतः पाप से भीरू हैं जो, रखें सदा संवेग यहाँ ।
धर्म-विषय की अर्चा-चर्चा, करें पाय शिव-गेह महा ॥

ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

संवेगी जितना बनें, आतम का सम जोय।
संवेगी कितना बनें, आतम का गम खोय॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण संवेग भावनायै नमः।

•••

6. शक्तितस् त्याग भावना

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- दुनिया में गुरु.....

मोक्षमार्ग में चलकर भविजन, त्यागमार्ग को अपनाते ।
मोह हटाकर समता लाकर, विषय-भोग ना अपनाते ॥

सदा शक्ति का कोष आत्मा, अनंत रूपी सब जानो ।
शक्तिहीन है नहीं आतमा, बन वैरागी पहचानो ॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥

रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जलें धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
भाव शक्तितः त्याग को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
रागी जीवन में कदा, पाते ना आराम।
त्यागी जीवन में सदा, पाते वे आराम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य

लय- जीवन है पानी की बूंद...

जुआ त्याग-कर चोरी तजता, शिकार कभी न करता जो।
अण्डा, मछली आदि मांस को, पूर्ण रूप से तजता जो॥
बनती अशुद्ध सड़ी वस्तु से, नशावान तज मदिरा को।
बाल-विवाहित पर तिय-सेवन, वेश्या-गमन तजे इनको॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तव्यसन त्याग सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

सूर्य अस्त हो जीव असंख्य, रात्रि में पैदा होते ।
गिरें भोज्य में अशुद्ध हो वह, गहें जीव रोगी होते ॥
महापाप वह हिंसा का हो, दुर्गतियों का कारण हो ।
महा प्रमादी बने आलसी, जैनीपन ना पालन हो ॥

ॐ ह्रीं श्री रात्रिभोजन त्याग सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

आलू, मूली, अदरक, गाजर, प्याज, लहसुन, घुइयाँ कंद ।
सकरकंद, सूरण अनन्त उन-जीवों के तन हों हि कंद ॥
अनंतकायिक जमीकंद ये, अतः तामसिक होते हैं ।
इनके सेवन महापाप से, धर्म निरर्थक होते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री कंदमूल त्याग सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

आगम में त्रस घात तथा वे, अभक्ष हैं बहुघात कहे ।
प्रमादवर्धक अरु अनिष्ट वा, अनुपसेव्य ये पाँच रहे ॥

त्रस अनन्त वे जीते मरते-जिनमें, वे मधु माँस रहे ।
करुणाधारी छोड़े हिंसा, इनमें ना है आश रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रसघात अभक्ष रहित शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥4॥

मूली गीला अदरक आदिक, जमीकंद मक्खन होते ।
नीम केतकी आदिक पुष्पों-में बहुजीव सदा होते ॥
इसी तरह से अन्य वस्तुएँ, जहाँ अल्प फल मिलता हो ।
बहुत जीव हैं मरते उनमें, वहाँ धर्म निष्फलता हो ॥

ॐ ह्रीं श्री बहुघात अभक्ष रहित शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

प्राणी हिंसक मदिरा पीकर, विवेक तजता पूर्ण जहाँ ।
माता, भार्या भेद लखे ना, प्रमाद, पापी पूर्ण वहाँ॥
प्रासुक होकर भी जो चीजें, उदरशूल आदिक देवें।
करें हानि वे अनिष्ट होतीं, रुचिकर तो भी ना सेवें॥

ॐ ह्रीं श्री प्रमादवर्धक व अनिष्ट अभक्ष रहित शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

इसी तरह गोमूत्र, पान का-उगाल लार मूत्र जो हैं ।
दूध ऊँटनी का, पुरीष अरु शंख-चूर्ण श्लेष्म को हैं ॥
तजते, हों वे प्रासुक तो भी, क्योंकि अनुपसेव्य जानो ।
एवं विकृत चित्र, वस्त्र, आ-भरण सेव्य ना पहचानो ॥

ॐ ह्रीं श्री अनुपसेव्य अभक्ष रहित शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

दहीबड़ा, निशि भोजन, बैंगन, मद्य, माँस, मधु को छोड़ें ।
कंदमूल, नवनीत, अजान व, तुच्छ फलों से मुख मोड़े ॥

बर्फ, अचार वा विकृत भोजन, पंच उदुम्बर पूर्ण तजें ।
विष, बहुबीजी, मिट्टी छोड़ें, बेर तज़ें, सुख पुण्य भजें ॥

ॐ ह्रीं श्री द्वाविंशति अभक्ष रहित शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 8 ॥

इसी तरह वे मर्यादा के, बाहर सब आहार तजें ।
जिनमें उपजे जीव असंख्य, त्रस-हिंसा तज पुण्य भजें ॥
बिना छना जल कभी न पीवें, असंख्य जीव घात जानो ।
नदी, कुआँ उस मूल स्रोत में, जीवानी करना जानो ॥

ॐ ह्रीं श्री अशुद्ध आहार जल त्याग सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

देवादिक की पूजा में जो, अर्पित वस्तु हैं न गहते ।
धर्मक्षेत्ररु धर्म द्रव्य हि, मेरा है यह ना कहते ॥
तथा आयतन से जीवन में, धन्धा-पानी ना करते ।
अपनी शक्ति दान करें व, ईर्ष्या-भावन ना रखते ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्माल्य व धर्म द्रव्य त्याग सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

पञ्चाणुव्रत नित वे पालें, तथा मद्य-मधु-मांस तजें ।
यही रहे हैं अष्ट मूलगुण, जिनसे सद्गति शीघ्र भजें ॥
बड़, पीपल, ऊमर भी जो हैं, तथा कठूमर पाकर वे ।
त्यागें ऐसे पंच उदुम्बर, जीव असंख्य बचाकर वे ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टमूलगुण सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

बारह भावन का चिंतन भवि, मोह-भाव-तज करते हैं ।
विषय पंच इन्द्रिय के जिनको-क्षणिक सदा नित कहते हैं ॥

यौवन धन गृह परिजन जो भी, इस जीवन में दिखते हैं ।
मेघाकार व इन्द्रधनुष-सम, ज्ञानी नश्वर लखते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री अनित्य अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

हरि के आगे जैसे मृग का, शरण रहे ना कोई है ।
उसी तरह इस जग में देखो, अमर रहे ना कोई है ॥
जहाँ मृत्यु के आगे सुरपति, नरपति खगपति ना बचते ।
मंत्र-तंत्र हैं नहीं बचावें, ऐसा ज्ञानीजन कहते ॥

ॐ ह्रीं श्री अशरण अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

यह संसार असार रहा है, सदा दुःखों से भरा हुआ ।
भ्रमता प्राणी विषय-सुखों में, भव-बंधन में बँधा हुआ ॥
जैसे खड्ग-धार पर मीठे, लगे स्वाद को कौन चखे ?
जिह्वा कटती खड्गधार से, स्वादु-अज्ञ ना उसे लखे ॥

ॐ ह्रीं श्री संसार अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

जन्म-मरण अरु सुख दुःखों को, जीव अकेला पाता है ।
कहाँ बाँटने दुःखादिक को, कौन सामने आता है ? ॥
गृहजन-मात पितादिक सब ही, जगत् स्वार्थ के साथी हैं ।
पाप-कर्म में दुखीजनों को, ना दुनिया अपनाती है ॥

ॐ ह्रीं श्री एकत्व अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

जैसे मिलकर रखा दुग्ध अरु जल लक्षण से भिन्न रहा ।
वैसे चेतन अरु इस तन का, जिनवर ने है भेद कहा ॥

फिर वह देखो सदा दूर जो, धन गृह आदिक जहाँ रहे ।
क्या हो सकते हैं चेतन के, भिन्न रहे जिननाथ कहें ॥

ॐ ह्रीं श्री अन्यत्व अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

प्राणी का तन खून मांस से, बना हुआ इक गृह जानो ।
तथा घिनौने पदार्थ बहते, जिसे अपावन पहचानो ॥
सुंदर - सुंदर और सुगंधित, पदार्थ जितने ही आते ।
तन के स्पर्श मात्र से सारे, दुर्गंधित हैं बन जाते ॥

ॐ ह्रीं श्री अशुचि अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

इस जग में आस्रव के कारण, कुधर्म कुदेवादि जानो ।
इसी तरह मिथ्यात्व अविरति व, कषाय योग सहित जानो ॥
तथा प्रमादी आतम है जो, उसे सदा हो आस्रव वह ।
ये ही दुख के मूल हेतु हैं, तजो धर्मी हे ! आस्रव वह ॥

ॐ ह्रीं श्री आस्रव अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

ज्ञानी आत्मा मन-वच-तन से, मिथ्यात्वादिक जब छोड़े ।
राग-द्वेष व पुण्य-पाप से, जब आतम यह मुख मोड़े ॥
पूर्ण कर्म का आना रुकता, मुनिवर में, संवर जानो ।
ध्यान लगाकर समता-पूर्वक, आतम में बसना जानो ॥

ॐ ह्रीं श्री संवर अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

जन्म-जन्म से कर्मों का यह, आतम बना खजाना है ।
जहाँ नष्ट हों स्वयं कर्म जब, उत्तम सुख ना माना है ॥

पुरुषार्थी वह तप के बल से, जब कर्मों का नाश करे ।
रखे पाल में आम पके सम, उत्तम सुख में वास करे ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्जरा अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

तीन लोक यह सब जीवों से, भले रूप से भरा हुआ ।
ना कोई है कर्त्ता इसका, धारण भी ना किया हुआ ॥
नहीं नाश कर सकता कोई, अविनश्वर जो कहलाता ।
रहता जिसमें जीव अकेला, कर्मों का है फल पाता ॥

ॐ ह्रीं श्री लोक अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

अहमिन्द्रादिक के वैभव वा, राजाओं के तन-सुख को ।
अनंत भव से भोगा जिसने, ना पाया चेतन-सुख को ॥
रत्नत्रय जो नहीं मिला है, रहा यही कारण जिसका ।
धारें उसको दुर्लभ जो है, सदा करें पालन जिसका ॥

ॐ ह्रीं श्री बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 22 ॥

जैनधर्म में मूल-रूप से, धर्म अहिंसा माना है ।
तथा जगत् में सर्वोत्तम वह, धर्म क्षमादि जाना है ॥
उसी धर्म में सच्चा सुख है, सदा उसी के गुण गायें ।
बन त्यागी वैरागी 'आर्जव', शीघ्र मोक्ष-सम्पत् पायें ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म अनुप्रेक्षा चिंतवन सह शक्तितस् त्याग भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 23 ॥

जयमाला

लय- संत शिरोमणि का सारा जग दीवाना.......

जैसे-जैसे भोग संपदा, को मानव जब तजता है।
वैसे-वैसे सम्यक् ध्यानी, परमातम को भजता है॥

जन्म-जन्म के बंधे हुए उस-अशुभ कर्म का क्षय होता।
पुण्य सम्पदा समवसरण पा, फिर प्राणी अक्षय होता॥
धर्म ग्रंथ वे सभी पढ़े हों, तथा शास्त्र भी खूब लिखें ।
नहीं त्याग है रंच मात्र वा, साधु संयमी नहीं लखें ॥
पुद्गल को ही पुद्गल भोगे, मैं क्या इसमें कुछ करता ?
कहे अज्ञ, बन इन्द्रिय-विषयी, पाप-कर्म को है गहता॥
देह-भोग में उदासीन हो, भव-सुख से मुनि विलग रहें ।
सदा धर्ममय परिणामों से, आतम-गुण-शृंगार करें ॥
परिषह सहते ममता तजते, ना तन, जग से राग करें ।
अतः आतमा भव-संकट से-छूटे भव से पार करें ॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥24॥

कहीं पूजते लोक में, रागी जन वे राग।
कभी पूजते लोक में, त्यागी जन ना राग॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् त्याग भावनायै नमः।

●●●

7. शक्तितस्तप भावना

स्थापना

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- कहाँ गये चक्री...

बाह्य जगत् से अन्तर्मुख हो, योगीजन जब ध्यान करें।
इन्द्रिय-विषयों से हटते वे, अन्तर्सुख का पान करें॥

जागे नहीं कषायें उनको, तप जिनके जीवन में हो।
समता पाता विरागदर्शी, मंदिर में या वन में हो॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तप भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तप भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तप भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥

तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
शक्तितस्तप भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
तप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा काम।
जप सम सुन्दर लोक में, नहीं दूसरा नाम॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ्य
लय-पिच्छि री पिच्छि...

ज्ञान तपों वा संयम में हम, नित उन्नत होते जावें।
समताधारी मुनिवर चाहें, ध्यान-सिद्धि शुभ हम पावें॥
अतः साधु वे खाद्य स्वाद्य व, लेह्य पेय आहार तजें ।
करें उपवास व आत्म-वास व-भूख प्यास में नाथ भजें॥

ॐ ह्रीं श्री अनशन तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

रागादिक दोषों को छोड़ें, नित रहते मुनि संतोषी ।
श्रावक देते सुन्दर - सुंदर, शुद्धाहार हि निर्दोषी ॥
तथापि मुनिवर रसना पर हैं, विजय प्राप्त करते रहते ।
बढ़ी भूख में थोड़ा खाकर, अवमौदर्य तपः तपते ॥

ॐ ह्रीं श्री अवमौदर्य तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

भोजन-विषयक तृष्णा छूटे, बधें कर्म ना अशुभ कदा ।
मुनि भिक्षा की अभिलाषा से, निकलें आगमिक विधि सदा ॥
श्रावक नवधा-भक्ति सहित वे, मुनि को चाहें पड़िगाना ।
कठिन नियम वह गृह-भोजन का, भाग्य रहे तो मिल जाना॥

ॐ ह्रीं श्री वृत्तिपरिसंख्यान तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

मुनिवर इन्द्रिय वश करने जो, मधुर रसों का त्याग करें ।
मीठा, नमक व दुग्ध, दही, घी, मिले तेल ना राग करें ॥
पहले संचित पुण्य-पाप से, इष्ट-अनिष्ट विषय मिलते ।
राग, द्वेष में कर्म-बंध हो, त्याग जहाँ सम-दल खिलते॥

ॐ ह्रीं श्री रस-परित्याग तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

नियम-शुद्धि हो ज्ञान-वृद्धि हो, ध्यान-सिद्धि वह अतिशय हो।
शान्त रहे मन विकल्प से वह, आतम समता-सुख-मय हो॥
अत: मुनीश्वर निर्जन वन वा, कोलाहल से दूर रहें।
शयनासन वह विविक्त रहता, पावनता से पूर रहें॥

ॐ ह्रीं श्री विविक्त शय्यासन तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

आतापन वर्षा वा सर्दी, योग तीन धारण करना।
तथा मौन-सह परिषह सहना, कठिन-कठिन आसन रखना॥
जो पुरुषार्थी विषय-सुखों का, सम्यक् त्याग करे जानो।
मोक्षमार्ग में मुनीश्वरों का, कायक्लेश-तप पहचानो॥

ॐ ह्रीं श्री कायक्लेश तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

प्रमाद अथवा ज्ञान बिना वह, शिष्य जहाँ अपराध करे।
तथा दोष से छूटें चाहे-गुरुवर से अपराध कहे॥
रहस्य बातें कहे मात से, कपट बिना वह शिशु जैसे।
गुरु से प्रायश्चित्त तप हेतु, शिशु अपराध कहे वैसे॥

ॐ ह्रीं श्री प्रायश्चित्त तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

जिन-दर्शन अरु मुनि-दर्शन में, जहाँ भक्ति है उमड़ पड़े।
रत्नत्रय की उन्नति करने, भविजन उनके चरण पड़ें॥
आदर वा सम्मान वंदना, वीतराग में जब होती।
विनयशीलता का तप जानो, वहाँ मान पर जय होती॥

ॐ ह्रीं श्री विनय तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

रहें तपों में लीन साधुजन, कर्म काटते निश-दिन हैं ।
नहीं चाहते तन के सुख को, बहुत दूर वे परिजन हैं ॥
तन, मन, प्रासुक उपकरणों से, भवि उपकार करें उनका।
मिटे थकावट रोग दूर हो, सेवा-भाव रहा जिनका ॥

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्य तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

पूज्य केवली-कथित धर्म को, दिव्य-ध्वनि से सुना गया।
पूज्य रहे वे गणधर स्वामी, जहाँ ग्रन्थ है रचा गया॥
उन ग्रन्थों का पाठ-पठन वा, चिन्तन-लेखन सदा करें।
आत्म-दोष का शोध चले फिर, बढ़े चरित जिन कहा करें ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वाध्याय तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

अंतरंग - बहिरंग परिग्रह, नहीं समझते मेरे हैं ।
यह तो हिंसादिक पापों के, सदा समझ लो घेरे हैं ॥
कर्म न मेरे साधु कहें यह, तन वैभव भी मेरा ना ।
रहा व्युत्सर्ग तपः साधु का, भव-पीड़ा का घेरा ना ॥

ॐ ह्रीं श्री व्युत्सर्ग तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

लय- हे गुरुवर धन्य हो तुम......

आर्त्त रौद्र जो ध्यान अशुभ हैं, सदा साधु वे त्याग करें ।
धर्म शुक्ल जो ध्यान कहें जिन, उनमें ही अनुराग करें ॥
साधु लीन जब आतम में हों, उपसर्गों में ना डिगते ।
समताधारी शुध-उपयोगी, शिव-पद को भी वह गहते॥

ॐ ह्रीं श्री ध्यान तपो वृद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

भिक्षा-शोधन करने मुनि जब, आगम-विधि से भ्रमण करें।
थोड़ा या नीरस मिल जाए, भोज्य कभी, मुनि सहन करें ॥
अवमौदर्य व उपवासों में, बड़ी क्षुधा-वेदन होवे ।
तो भी अलाभ में लाभों-सम, मानें मुनि वे विधि खोवें॥

ॐ ह्रीं श्री क्षुधा परिषह विजय सह शाक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

ग्रीष्मकाल अरु आतप में भी, तथा अलाभ व अनशन में ।
बढ़े प्यास जब अग्निशिखा-सम, तन-विरुद्ध उस भोजन में॥
कठिन पिपासा की बाधा मुनि, समता रख सह लेते हैं ।
समाधिरूपी ध्यान सुगन्धित, शीतल जल पी लेते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री तृषा परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

कभी देख लो शीतल चलती, झंझावात जहाँ गतिमान ।
कंपित होता तन मुनिवर का, रखते समता, न दुख मान ॥
ज्ञान-भावनारूपी गर्भा-लय का आश्रय मुनि लेते ।
बर्फ-समान बने तन तो भी, सदा ध्यान में चित् देते ॥
(शीत परिषह सह लेते)

ॐ ह्रीं श्री शीत परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

ग्रीष्मकाल में प्रखर सूर्य से, जल हरियाली जब सूखे ।
धरती हवा हि उष्ण बने वह, गला, तालु भी जब सूखे ॥
छाया ना मिलती है मग में, पग में फोले बनते हैं ।
प्रतीकार के बिना साधु वे, उष्ण-परीषह सहते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उष्ण परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

दंशमशक, मक्खी, खटमल वे, चीटी, बिच्छू जीव सभी- ।
काटें, चखते खून साधु का, नहीं खेद मुनि करें कभी ॥
इनका जीवन चले व मेरा, तप नित ही बढ़ता जावे ।
तन से छोड़ा मोह सभी है, ध्यान आत्म दृढ़ता पावे ॥

ॐ ह्रीं श्री दंशमशक परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

यथाजात बालक के सदृश, निष्कलंक जीवनधारी ।
सभी तरह की भोग-सम्पदा, छोड़ी, बनकर अविकारी ॥
चाह लँगोटी की दुख दे व, चिन्ताओं में मन उलझे ।
लज्जा तज उस ब्रह्मचर्य में, लीन; लोक में मुनि सुलझे ॥

ॐ ह्रीं श्री नाग्न्य परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

भोगों से मुनि उदासीन हैं, गीत नृत्य वादित्र नहीं ।
शून्य-गृहों में देव-कुलों में, तरु-कोटर में रमें वहीं ॥
रति तज मुनि गिरि गुफा पर्वतों-में ना तन-सुख याद करें ।
दया पालते दोष-मुक्त वे, धर्मी नहीं प्रमाद करें ॥

ॐ ह्रीं श्री अरति परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

नवयौवन से भरी व मद से-सहित रही उस महिला से ।
कामवाण वा मधुर हास्य-सह, मायाचारी महिला से ॥
कछुए सदृश अपने मन को, गुप्त करें वैरागी वे ।
विफल करें उस कामदेव को, शिवपथ के शुभ रागी वे ॥

ॐ ह्रीं श्री स्त्री परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

सद्गुरु के गुरुकुल में रहकर, ब्रह्मचर्य को धारा था ।
तत्त्व-बोध सह आगम गुरु की-आज्ञा को स्वीकारा था ॥
वायु-समा निःसंग विरोधी - मार्गों को जिनने छोड़ा ।
कंकड़, काँटे आदिक लगने-पर भी चलना ना छोड़ा ॥

ॐ ह्रीं श्री चर्या परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।॥21॥

निर्जन जंगल, शून्य गृहादिक-में मुनि का वास्तव्य रहा ।
नियत काल में आवश्यक सब-पलें सदा मन्तव्य रहा ॥
दृढ़ आसन-सह-ध्यानादि मुनि-करते, काटें कर्म सदा ।
निश्चल तन रख सिंहादिक से, निर्भय मुनि, ना डिगें कदा॥

ॐ ह्रीं श्री निषद्या परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥22॥

ध्यान पठन व कठिन विहार से, जहाँ थकावट आती है ।
कठिन, विषम जिस भू पर मुनि को, स्वल्प हि निद्रा भाती है॥
एक पार्श्व या दण्ड-समा मुनि, ज्ञान-भाव-सह शयन करें ।
शीत, उष्ण या उपसर्गों में, अचल साधु, विधि शमन करें॥

ॐ ह्रीं श्री शय्या परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥23॥

कठोर निंदक कोप जनक वच, सुनकर कुपित न हों मुनिवर।
ना ही किञ्चित कषाय धारें, तप में लीन रहें मुनिवर॥
प्रतीकार कर सकते तो भी, शान्ति नीर को पीते हैं ।
अपमानों को स्वागत समझें, बाधाओं सह जीते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री आक्रोश परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥24॥

दण्डा वा असि तीक्ष्ण अस्त्र से, ताड़न, पीड़न बाधा हो ।
समता रखकर अविकारी बन, जहाँ मौन को साधा हो ॥
वहाँ साधु का जीवन-दर्शन, ज्ञानादि का है आगार ।
नश्वर तन की पीड़ा को सह, नाश विधि करते अनगार॥

ॐ ह्रीं श्री वध परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं॥25॥

सूख गया है तन मुनिवर का, त्वचा जली-सी है मानो ।
तो भी भोजन दवा, वसति वे, नहीं माँगते हैं जानो ॥
किसी वस्तु या भिक्षा के वश, दीन वचन ना कहें कभी ।
स्वतः पुण्य से धर्म-वस्तुएँ-मिलें, मोह को तजें सभी॥

ॐ ह्रीं श्री याचना परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥26॥

पाणि-पात्रि मुनि एकाहारी, मौन धार भिक्षा गहते ।
नहीं कष्ट दे जिनकी चर्या, समभावी यतिवर रहते ॥
अलाभ में भी लाभों-सदृश, संतोषी हो मन जिनका ।
ग्राम गृहों का बंधन ना हो, निर्मम अतिथि हि मन उनका॥

ॐ ह्रीं श्री अलाभ परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥27॥

देह अशुचिता पूर्ण रही है, नश्वर अस्थिर तथा रही ।
अतः नहीं संस्कार योग्य है, धर्मी देह न वृथा रही ॥
अति आवश्यक खान-पान मुनि, ओंगन लेपों-सम लेते ।
रोग सैकड़ों, व्याधि कठिन वे, समता रख मुनि सह लेते ॥

ॐ ह्रीं श्री रोग परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥28॥

मुनि-तन में जब डण्ठल कंकड़, मिट्टी काँटादिक चुभते।
रहे भेद-विज्ञान, अतः ना- कष्ट, तृणादिक जब चुभते ॥
जितने चुभते कंकड़ आदिक, मानें शल्यचिकित्सा वे।
कर्मों का हैं कर्ज चुकाते, नित पीते अमृत-सा वे ॥

ॐ ह्रीं श्री तृणस्पर्श परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 29 ॥

जलकायिक की हिंसा को हैं, सदा बचाते वे मुनिवर।
उष्ण ताप से सने स्वेद में, लगा मैल सहते मुनिवर ॥
खुजली चले व जले चर्म-सम, दिखता तन तो भी यतिवर।
वे न स्नान व मालिश चाहें, मल परिषह सहते मुनिवर ॥

ॐ ह्रीं श्री मल परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 30 ॥

बड़े-बड़े तप तपते हों वा-ज्ञाता-आगम के तो भी ।
अगर नहीं जन आगे करते, करें प्रशंसा ना तो भी ॥
ना सत्कार पुरस्कारों में, मुनिवर लालच कुछ रखते ।
रत्नत्रय-मय धर्म-तेज से, सदा-प्रभावन नित करते ॥

ॐ ह्रीं श्री सत्कार-पुरस्कार परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 31 ॥

सभी शास्त्र वे ज्ञात मुझे हैं, न्याय, छन्द के शास्त्र कहाँ ?
तथा रहे अध्यात्म-शास्त्र वे, कण्ठपाठ हैं सभी यहाँ ॥
रवि-सम मेरे ज्ञान सामने, दूजे जुगनू-सम रहते ।
ऐसा कभी न साधु विचारें, प्रज्ञा परिषह वे सहते ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रज्ञा परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 32 ॥

अज्ञानी हूँ अतः लोक-जन, मुझे तिरस्कृत करते हैं ।
दुश्चर तप को तपने पर भी, शुभातिशय ना दिखते हैं ॥
सार नहीं क्या नियम, व्रतों में, ऐसा नहीं विचार करें ।
समता-सह-अज्ञान परीषह , सहते धर्म विचार करें ॥

ॐ ह्रीं श्री अज्ञान परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 33 ॥

बहुत काल से दीक्षित हूँ मैं, किये बहुत उपवास सभी ।
परम विरागी बना किया व, काम-शत्रु का नाश सभी ॥
फिर भी ना दिखता है अतिशय, ऋद्धि आदि का इस जग में ।
वहाँ अदर्शन परिषह सहते, दृढ़ता रखते शिव-मग में ॥

ॐ ह्रीं श्री अदर्शन परिषह विजय सह शक्तितस् तपो भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 34 ॥

जयमाला

लय- आओ नी आओ नी.....

कर्म दूर हों धर्म साथ हो, यही लक्ष जिनका होता ।
रत्नत्रय की निर्मलता हो, सही तपस्वी वह होता ॥
ना भावी भोगों की कांक्षा, नहीं इन्द्र-पदवी चाहे ।
तब तो फिर वह मोक्ष सु-ललना, शीघ्र उसे वरना चाहे ॥
संयम तप बिन मात्र शास्त्र के, पढ़ने में जो आगे हैं ।
शिव-पथ उनसे बहुत दूर है, सम-सुख भी ना जागे है ॥
बड़ा ज्ञान भी उनका जग में, नहीं प्रशंसित माना है ।
हस्ति सम स्नान समझ लो, रज से पुनः नहाना है ॥
परम तपों को तपने मुनिजन, नित परिषह वे सहते हैं ।
कर्मों का संवर, क्षय करके, अन्तिम शिव को लहते हैं ॥
मुनियों के तप की शुभ शोभा, परिषह सदा बढ़ाते हैं ।
समता-सह शुभ 'आर्जवता' से, शिव-सोपान चढ़ाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥35 ॥

तप करता नित साधु वह, पाता भव दुख पार ।
जप करता नित साधु वह, पाता शिव सुख सार ॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री शक्तितस् तपो भावनायै नमः ।

•••

8. साधु-समाधि भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- ओ पालनहारे...

धन्य रहे वे गुणी मुनीश्वर, रत्नत्रय के साधक हैं ।
तत्पर रहते मोक्ष-मार्ग में, तत्त्वों के प्रतिपादक हैं ॥
जैसे गृहि वे आग लगे तो, शीघ्र बुझाकर शान्त करें ।
उसी तरह बहु उपसर्गों में, मुनि मन को शुभ शान्त करें ॥

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म ।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म ॥

करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान ।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप न खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान ।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान ।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान ।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजे काम नश जाय ।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय ।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान ।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान ।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप ।
शान्त हुई न भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप ।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान ।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान ।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान ।।
करे जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान ।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान ।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय ।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय ।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान ।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
साधु समाधि सु भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय।।
करें जहाँ जो साधु की, समाधि सुन्दर जान।
वरें वहाँ वो साधु भी, समाधि सुन्दर मान।।

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- नव प्रभात की...

चारों गति में मानव-जीवन, दुर्लभ है समझा जाता ।
उनमें भी वह जैन सुकुल जो, दुर्लभतम माना जाता ॥
वीतरागमय देव-शास्त्र वा, साधु मिले वह भाग्य रहा ।
गुरु-उपदेश वा वैयावृत्ति, बड़ा पुण्य सौभाग्य रहा ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्य गुरु आगम उपासना सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 1 ॥

गुरु-वाणी सुन वैरागी बन, जहाँ भव्य दीक्षा लेता ।
वहाँ समझ लो वैरागी वह, मुक्तिमार्ग फल पा लेता ॥

अत: धर्म को अपनाने हम, उन धर्मी की शरण गहें ।
धर्मीजन की आपत्ति दु:ख, मन वच तन से हरण करें ॥

ॐ ह्रीं श्री साधु आपत्ति हरण गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

अगर जगत् में साधुजनों का, योग नहीं वह मिलता है ।
भविकजनों को धर्ममार्ग का, ना कदापि सुख मिलता है ॥
जैसे सूरज के अभाव में, क्या दल कमलों का खिलता ?
साधुजनों के उपदेशों से - भव्यजनों को सुख मिलता ॥

ॐ ह्रीं श्री संत संगत गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

जन्म-जन्म से जिसे मिला हो, जैनधर्म उत्तम जानो ।
शीघ्र धर्म की सेवा करता, मोक्षमार्ग चलता जानो ॥
इसीलिए हे! भवि जन उत्तम-धर्म मार्ग स्वीकार करो ।
मोक्षमार्ग पर चलो निरंतर, यतिजन का उपकार करो ॥

ॐ ह्रीं श्री यति उपकार गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

अवस्थान हो रत्नत्रय में, समीचीन वह सुखदाई ।
संधारण भी समीचीन हो, रत्नत्रय का जो भाई ॥
वहीं समझ लो साधु-समाधि-भावन उत्तम मानी है ।
पद वह मिलता तीर्थंकर का, जिनवर की यह वाणी है ॥

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रय संधारण गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

नित कल्याण जहाँ जीवों का, जिससे होता सदा रहा ।
धर्म अहिंसामय कहते मुनि, सुधीजनों को सुधा रहा ॥

जिन मुनिवर का जीवन सारा, मंगलमय निर्दोष रहे ।
उन मुनि की हो धर्म-सुरक्षा, फहरे ध्वज जयघोष रहे॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म सुरक्षा गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

सहें घोर उपसर्ग मुनीश्वर, दुर्जन देते गाली हैं ।
अशुचि नंगे आदिक कहते, देख बजाते ताली हैं ॥
पत्थर मारें नगर निकाला-देवें तो भी नहीं डरें ।
समता-प्याला पीते मुनिवर, कर्म-शत्रु वे तभी डरें ॥

ॐ ह्रीं श्री समता गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

धन्य मुनीश्वर पूज्य हमारे, तन-चिंता ना जो करते ।
तथा दिगम्बर बनकर मुनिवर, धर्मी बन लज्जा तजते ॥
रत्नत्रय में बढ़ें सदा वे, नहीं मार्ग से डिगें कदा ।
शिव के गामी सुख के धामी, जिनको भविजन कहें सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री मोक्षमार्ग च्युत भाव रहित साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

धैर्य बिना या धैर्य सहित वे, मरण करें यह निश्चित है ।
अतः धैर्य-सह-मरण करें तो, सद्गति पाना निश्चित है ॥
धन्य समाधि हि मरण करें जो, धैर्यवान हैं वीर महा ।
उन समकितधारी को नमता, मिले समाधि हि पूर्ण जहाँ ॥

ॐ ह्रीं श्री धीर-वीर समाधि गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

बँधे छूटता क्रमशः प्राणी, ममता, निर्ममता वाला।
अतः पूर्ण पुरुषार्थी बनकर, निर्ममता का पी प्याला।।

रागी विषयों को चाहे जो, कर्म बंध बँध जाता है।
वैरागी वह कर्म नाशकर, मुक्ति सुपद को पाता है।।

ॐ ह्रीं श्री ममत्व विरहित साधु श्रद्धा गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

संयोगों से भव में जिय को, दुख समूह का भागीदार।
बनना पड़ता है इस कारण, जिनमें सुख न वे निस्सार।।
इन संयोगों को मैं मन-वच, तन के कर्मों से तजता।
सद् ध्यानी व शुद्ध स्वरूपी, बनूँ गुणों से नित सजता।।

ॐ ह्रीं श्री परसम्बन्ध रहित निर्गन्थ साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

पुद्गल के जितने परमाणु, उनको मोही बन मैंने।
बार-बार भोगा, छोड़ा है, विषयों का सुख रस लेने।।
अतः रहे जो जूठन-सदृश, सारे पुद्गल हैं जिनमें।
अभिलाषा कैसे हो सकती, मुझ ज्ञानी के जीवन में।।

ॐ ह्रीं श्री भोगाकांक्षा रहित साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

मेरा नहीं मरण होता है, फिर भय मुझको कहाँ रहे।
तथा रोग भी न हो मुझमें, दुःख क्या मुझको वहाँ रहे।।
बालक बूढ़ा, युवा नहीं मैं, ये सब बातें तन में हैं।
मेरी आतम अजर अमर है, गुण अनन्त चेतन में हैं।।

ॐ ह्रीं श्री वैराग्य भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

पर के सब उपकारों को तज, निज उपकारी तू बन जा।
पर का मोही असद् ध्यान तज, निज का ध्यानी तू बन जा।।

दिखाई देने वाले जग में, अज्ञ सदा पर उपकारी।
दिखते हैं, पर ध्यानी आतम, निज में निज से निजकारी।।

ॐ ह्रीं श्री आत्मोपकारी भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

जो आतम गुरु सदुपदेश से, अभ्यासी निज अनुभव से।
स्व अरु पर में भेद ज्ञान को, जाने वैरागी भव से।।
ऐसा मानव शुद्ध बोध से, कर्मों का क्षय कर देता।
अनन्त सुख का स्वामी बनकर, शिवपुर को तब लख लेता।।

ॐ ह्रीं श्री भेदविज्ञान गुण सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

निर्जन थल पर जिसे ठहरना, उत्तम प्रतीत होता है।
एकान्तवासि आत्म अनुभवि, आत्म ध्यान रत होता है।।
अपने किसी कार्य वश जिसको, कुछ वच कहना हो तो भी।
समिति पूर्वक शीघ्र वचन कह, भूले वह इस तन को भी ।।

ॐ ह्रीं श्री निर्जनप्रियता भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

जो मूरख बहिरातम पुद्‌गल-द्रव्यों का स्वागत करता।
ना छोड़ें वे कदापि पुद्‌गल, चारों गतियों में भ्रमता।।
निजी स्वार्थ बस जग द्रव्यों को, रस जिसके युत है आता।
उसका साथ शीघ्र ना तजता, वह ऐसा आगम गाता।।

ॐ ह्रीं श्री पर पदार्थ अनुराग भाव रहित साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

अनेक तरह हि ध्यान सिद्धि हो, अत: चित्त को थिर करना-।
-चाहो तुम तो, इष्ट विषय व, अनिष्ट में समता रखना।।
मोह राग व द्वेष तजो तुम, इष्ट अनिष्ट समागम में।
भव शरीर व भोग भूलकर, रत हो जाओ आतम में।।

ॐ ह्रीं श्री एकाग्र चित्त भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

कुछ भी चेष्ठा नहीं करो तुम, वचनों से भी ना बोलो।
विचार भी तुम मत करना वा, लीन आप में थिर हो लो।।
ऐसा करने से आतम यह, ध्यान लीन हो जाती है।
ऐसा ही है परम ध्यान वह, जग में आत्म सुहाती है।।

ॐ ह्रीं श्री आत्मलीनता भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

जिसका मन वह क्षोभ रहित है, तत्त्व विचार में स्थिरता।
ऐसा योगी निर्जन थल में, निष्प्रमाद आसन धरता।।
अपनी आतम के स्वरूप का, चिन्तन नित अभ्यास करे।
शीघ्र मिले शिवपद की मंजिल, ऐसा अथक प्रयास करें।।

ॐ ह्रीं श्री निजात्म चिन्तन भाव सह साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

आत्म ध्यान में लीन साधु जो, क्या है ? कैसा ? किसका है ?
किस कारण से और कहाँ है ? इसमें ना मन जिसका है।।
निज शरीर भी न जाने फिर, अन्य पदार्थ कहाँ जाने।
ना विशेष जाने विषयों को, चेतन में रमना जाने ।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विकल्पता रूप साधु समाधि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

जयमाला

लय- समता को धारने वाले.....

रत्नत्रय की रक्षा करने, भविजन समाधिमरण करें ।
धर्म-हानि ना हो पाती है, शीघ्र मोक्ष में गमन करें ॥
युगों-युगों से प्राणी ने वे, मरण अनेकों किये यहाँ ।
नहीं हुआ है सुमरण जिसका, धर्म मिला ना कभी जहाँ ॥

पढ़नेवाले शास्त्री हैं जो, स्वयं मात्र का हित करते ।
अगर करें वे धर्मी सेवा, वहाँ स्व-पर का हित करते ॥
खूब पढ़े हों शास्त्री, मुनिवर , मात्र काम ना शास्त्र करें ।
जिनने की मुनिवर की सेवा, तभी समाधि प्राप्त करें ॥
आगम में ये पंच तरह के, मरण कहे हैं प्रभु-जिन ने ।
बाल-बाल ही प्रथम मरण है, दूजा बाल कहा जिन ने ॥
कहा बाल-पंडित तीजा है, चौथा पंडित-मरण कहा ।
और पाँचवाँ पण्डित-पण्डित, जिनवर का वह मरण रहा ॥
बाल-बाल है मरण रहा जो, महा अज्ञ मिथ्यादर्शी ।
करता, अरु वह बालमरण है, स्वल्प अज्ञ सम्यग्दर्शी ॥
एकदेश वे व्रत के धारी, करते मरण बालपण्डित ।
पण्डित सुमरण मुनि का होता, जिनवर का पण्डित-पण्डित॥
प्रथम मरण मिथ्यादर्शी का, ना उत्तम गति देता है।
सम्यग्दर्शी का हो सु-मरण, धर्म-सम्पदा देता है॥
अणुव्रती का सुमरण हो तब, वैमानिक वह शुभ गति हो।
साधुमरण भी सुरगति दे या- बने जिनेश्वर शिवगति हो॥

ॐ ह्रीं श्री साधु समाधि भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥22॥

दोहा

जाती ममता वह रहे, जहाँ समाधि जाप।
आती समता वह रहे, वहाँ समाधि आप ।।

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री साधुसमाधि भावनायै नमः।

•••

9. वैयावृत्त्यकरण भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- पलके ही पलकें....

सभी भावना, सारे तप में, वैयावृत्य बड़ा समझो।
कर्म निर्जरा पुण्य खजाना, मिलता जहाँ बड़ा समझो।।
सभी व्रतों का पालन कर भी, नहीं साधु की सेवा हो ।
वृक्ष रहे अरु फल न हो तो, कहाँ वृक्ष की शोभा हो ।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान ।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप न खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय ।।

सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आँऊ मैं, सिद्ध रहें नित पास।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई न भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्टकर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग।।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
भाव सु-वैय्यावृत्य को, देयँ अर्घ गुण गाय।
सेवा उत्तम शक्ति दे, जहाँ सफल हो ध्यान ।
सेवा उत्तम भक्ति दे, वहाँ विफल हो मान।।

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- समता को धारने वाले...

मुनि को नवधा-भक्ति सहित वे, दान करें शुभ पुण्य भजें।
स्वल्प काल में रत्नत्रय गुण, संयम से वे धन्य सजें॥
सप्त गुणों से सहित दान वह, उत्तम गति का कारण है।
समकित गृहि को स्वर्ग मिले वह, मुनि बन मुक्ति सु-पावन है॥

ॐ ह्रीं श्री आहार दान गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1 ॥

मुनि को पड़िगाहन करना वा, उच्च स्थान भी नित देना ।
पादोदक भी सिर पर लेकर, पूजा-पुण्य कमा लेना ॥
मन वच तन की शुद्धि सहित वह, शुद्धाहार व जल कहना ।
अन्तरंग से विनीत बनकर, प्रणाम भी उत्तम कहना ॥

ॐ ह्रीं श्री नवधा भक्ति गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 2 ॥

श्रद्धा होना सत्पात्री में, संतोषी बन भक्ति रहे ।
भोजन में विज्ञानपना हो, व अलोभ अभिव्यक्ति रहे ॥

दान-समय में क्षमा-भाव हो, दान-विषय में सत्य कहें ।
यही सप्त-गुण जिनसे मण्डित, धर्मीजन ये नित्य रहें ॥

ॐ ह्रीं श्री सप्त गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥3॥

अर्हत् प्रभो की वैयावृत्ति, करने भवि पूजा करते ।
पाप-कर्म को धोते नित ही, पुण्य-खजाना वे भरते ॥
जग-विषयों से राग अशुभ वह, आगम में पहचाना है ।
परमेष्ठी का राग रहा शुभ, सुख का बने खजाना है ॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत् पूजा गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥4॥

हाथ-पैर आदिक अंगों को, नित्य दबाना यतियों के ।
शुद्ध उपकरण-दान, साथ में-गमन करें भी यतियों के ॥
उत्तम सद्गुण पुण्य कमाने, मुनियों की नित सेवा हो ।
मान गले अरु वात्सल्य हो, सुख की मिलती मेवा हो ॥

ॐ ह्रीं श्री गुणानुराग भाव सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

ऐसे मुनि को कर्म योग में, तरह-तरह व्याधि आवें ।
सहते हैं मुनि, कर्म-निर्जरा-करते कभी न घबरावें ॥
नहीं बुलाते कभी किसी को, सेवा करने तुम आओ ।
हम सबका कर्त्तव्य रहा है, गुरु-सेवा में जुट जाओ ॥

ॐ ह्रीं श्री रोग भय रहित वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

अशुभ कर्म के कभी योग में, रोग साधु को क्षय का हो।
दुर्बल बनते खाँसी आवे, ना बल मन कम उनका हो ॥

धर्म-ध्यान में कमी करें न, भव-रोगों का क्षय करते ।
श्रावक सेवा करें साधु की, रोग लगे ना भय करते ॥

ॐ ह्रीं श्री मनोबल सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 7 ॥

कभी देख लो कुष्ट रोग भी, मुनि को घेरे में लाता ।
धवल-धवल से धब्बे पड़ते, तन दुर्गन्धित बन जाता ॥
सम्यक्त्वी जन सदा साधु को, भोजनादि दे सेवक हैं ।
नहीं घृणा से देखें मुनि को, जैनी सच्चे श्रावक हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री विचिकित्सा दोष रहित वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 8 ॥

पराधीन मुनिवर की चर्या, कहती यह जिनवाणी है ।
निज भोजन की विषयक बातें, नहीं करें वे ज्ञानी हैं ॥
देह विरुद्ध प्रकृति योग में, ज्वर आदिक हो व्याधि महा ।
श्रावक, मुनि औषध सेवा कर, चाहें नहीं उपाधि जहाँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अपेक्षा रहित वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

हो उपवास व अन्तराय भी, ना मुनि कष्ट विचार करें ।
बड़ी धूप हो, दूर बहुत हो, तो भी साधु विहार करें ॥
पैरों में छाले बन जाते, फोले भी पड़ जाते हैं ।
मुनिवर तन से निस्पृह रहते, सेवक पुण्य कमाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री साधु विहार गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

मिले विधर्मी या संकट में, साधु मार्ग से डिगे कदा ।
मिथ्यादर्शन आवे उसमें, तन्त्र-मंत्र में लगे सदा ॥

ऐसे मुनि से आगम चर्चा, महापुरुष का चरित कहें ।
जिन-दर्शन में दृढ़ता आवे, बनें सुदृष्टि चरित गहें ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनदर्शन दृढ़ता सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

उपसर्गों या रोगों में जब, प्रतीकार ना हो सकता ।
बहुत बड़ा दुर्भिक्ष आय जब, और दूर ना हो सकता ॥
इसी तरह उस बूढ़ेपन में, रत्नत्रय ना पल सकता ।
तभी धारते सल्लेखन मुनि, तब रत्नत्रय बच सकता ॥

ॐ ह्रीं श्री संलेखना गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

वहाँ साधुजन धैर्य दिलाते, अशन कराते विधि से-पूर्ण ।
श्रावकजन को दे निर्देशन, वैयावृत्ति करें सुपूर्ण ॥
मोक्ष-मार्ग में चित्त रमे वह, अतः सुनाते आगम हैं ।
अनुप्रेक्षाएँ, समयसार व, पाहुड़ जो परमागम हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री धैर्य भाव गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

क्षपक मुनीश्वर की सेवा में, अड़तालीस रहें मुनिवर ।
हाथ पकड़कर सजग उठाते, तथा चलाते हैं मुनिवर ॥
नित्य रात में पहरा देते, करवट देते मृदुता से ।
पैर आदि वे अंग दबाते, मीठे बोलें लघुता से ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टचत्वारिंशत् मुनि सेवा सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

सल्लेखन को करनेवाले, अथवा शक्तिहीन मुनि को ।
आसन देते और बिठाते, करवट देते जो मुनि को ॥

अंग दबाते मैल उठाते, तथा सुनाते आगम को ।
हे ! भविजन वे सद्उपकारी, पाते शिवसुख पावन को ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री सदोपकार गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

सूरि, बहुश्रुत, महातपोधन, शैक्ष, ग्लान व गण, कुल हैं ।
संघ, साधु या मनोज्ञ मुनिवर, हम सबके वे गुरुकुल हैं ॥
जिनकी सेवा, पूजा निश-दिन, करके भविजन गुण गायें ।
उन जैसे शिवमग पर चलकर, शीघ्र शिवालय सब पायें ॥

ॐ ह्रीं श्री दश विध वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

रत्नत्रय की रक्षा में मुनि, तन-ममता को तज देते ।
मूल्यवान उस रत्नत्रय से, उत्तम गति जो भज लेते ॥
उस समाधि के मंगल क्षण में, क्षपक धर्म से पूर्ण रहे ।
नहीं वेदना बेचैनी हो, यही भावना पूर्ण रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री तन वेदना निवारक वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

जन्म-जन्म से तरह-तरह के, भोज्य सभी वे खाये हैं।
नहीं अभी तक पेट भरा है, खाली ही रह पाये हैं।।
इसी तरह तृष्णा की खाई, नहीं पूर्ण भर पाई है।
लोभ छोड़ संतोष गहा जब, उसने मुक्ति पाई है।।

ॐ ह्रीं श्री संतोष गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

भव-विषयों की वाँछा तज मुनि, भोग; रोग की जड़ मानें।
कर्म-बंध में कारण ये हैं, नश्वर सुख जिनमें जानें।।
मुख हो कडुवा तभी देख लो, मीठा भी कडुवा लगता।
राग-भाव व कषाय हो जब, धर्म सदा फीका लगता।।

ॐ ह्रीं श्री अकषाय गुण सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

जैसे चन्द्रमणी गंगाजल, चंदन शीतल कहलाता।
मात्र वैषयिक सुख को देता, नहीं धर्म का सुख लाता।
समीचीन साधु की वाणी, सत्य व साधु वचन कहे।
शीतल होती चन्द्र आदि से, सारे भ्रम को दूर करे।।

ॐ ह्रीं श्री मृदु वाणी सह वैयावृत्त्यकरण भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

जयमाला

लय- ज्ञानी का ध्यानी का.......

सारे जग में उत्तम पद वह, पूज्य सदा देवों से भी ।
विषय-वासना दूर जहाँ पर, दुर्लभ सब सम्पद् से भी ॥
इन्द्र चक्रवर्ती के वैभव, तृण समान समझें मुनिवर ।
भोग, सुखों को छोड़ सदा वे, आतम-रस चखते यतिवर ॥
बना जिनालय सुंदर-सुंदर, मनहर जिसमें प्रतिमाएँ ।
तथा ध्वजा से शोभा बढ़ती-आलय की, भवि गुण गाएँ ॥
श्रुत व चारित रहे सभी कुछ, धर्म मार्ग में रहे प्रजा ।
शोभा ना हो गुरु-सेवा बिन, सत्सेवा ही रहे ध्वजा ॥
निर्विचिकित्सा गुण पालक जन, सदा गुणी सेवा करते ।
आवे जब आपत्ति साधु को, सभी स्वयं झेला करते ॥
भोजन तन अनुकूल नहीं तो, वहाँ वमन भी हो जावे ।
दुर्गन्धित वह वमन देखकर, सज्जन घृणा न अपनावे ॥
मुनियों को जो नमन करें फिर, उच्च गोत्र मिलता जानो ।
आहारादिक दान करें जो, सुंदर भोग मिलें जानो ॥

पड़िगाहन आदिक करने से- पूजा जग में मिलती है ।
भक्त बने तन की सुन्दरता, सुकीर्ति थुदि से मिलती है ॥
गुणानुरागी साधुजनों की, परिचर्या नित करते हैं ।
कष्ट दूर हो, सौख्य पूर्ण हो, धर्म-भावना रखते हैं ॥
चले धर्म वह धर्मी से है, यथा चक्र से रथ चलता ।
मोक्षमार्ग में धर्मीजन से, चले धर्मरथ शिव मिलता ॥

ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्त्यकरण भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥21॥

दोहा

वैयावृत्त्य सुःसाधु की, देती सुखदा धाम।
वैयावृत्त्य सु-साधु की धोती दुखदा नाम।।

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री वैयावृत्यकरण भावनायै नमः।

•••

10. अर्हद् - भक्ति भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

देवों के भी देव रहें वे, छियालीस गुण के धारी।
उत्तम गति व शिव के कर्त्ता, मंगलकारी उपकारी॥
अति सुंदर तन निर्मल जिनका, एक हजार आठ लक्षण।
शुभकर सुंदर मनहर जिनवर, सदा नमन हो मम क्षण-क्षण॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहुकाल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप न खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई न भूख यह, छोड़ गँहू निजरूप।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै मोहांधकार दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय।।

मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
अर्हत् सु-भक्ति भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय।।
मन से पावन जो बनें, होय भक्ति अरिहंत।
तन भी पावन जो बनें, देयँ शक्ति अरिहंत।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- करता रहूँ गुणगान...

क्षुधा, पिपासा, राग, द्वेष से, मोह, भयों से मुक्त हुए ।
चिंता, मद, रति, निद्रा तजकर, निरोगता से युक्त हुए ॥
स्वेद, खेद वा नहीं बुढ़ापा, जन्म, मरण, उद्वेग नहीं ।
विस्मय ना है, निर्दोषी हैं, चेतन तन में भेद वहीं ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टादश दोष रहित अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 1 ॥

जहाँ भेद तन चेतन में हो, वही आत्म जिन अर्हन् है ।
अतिशयकारी पूजाओं से, पूज्य बनें वह भगवन् है ॥
लोकालोक व सभी वस्तु के, ज्ञानवान वे जिनवर हैं ।
अतः पूजते अर्हत् प्रभु को, श्रावक, सुर, सब मुनिवर हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वज्ञ गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

चार घातिया कर्म नाशकर, बन जाते अर्हत् स्वामी ।
देव नरेन्द्र व तीन लोक से, पूज्य बनें वे गुणनामी ॥
समवसरण वा गंधकुटी में, वाणी मंगल खिरती है ।
मोक्ष-दायिनी वाणी सुनकर, जनता भव से तिरती है ॥

ॐ ह्रीं श्री हितोपदेशी गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

सारे वैभव भोग-सम्पदा, नहीं लुभा पायी जिनको ।
छोड़ा सब कुछ वन में जाकर, नहीं पुनः देखा जिनको ॥
आतमदर्शी वीतराग बन, कर्मों का बंधन तोड़ा ।
बने केवली भगवन् शाश्वत, चेतन से नाता जोड़ा ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

अष्ट महा उन प्रातिहार्य से, शोभित जिनवर हैं प्यारे ।
चौतिसातिशय उत्तम जिनके, जग में अपूर्व जिन न्यारे ॥
मुनियों के गण सदा लीन वे, चरणकमल में गुण गायें ।
भव्य कमल को विकसित करते, जिनवर सबके मन भायें ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुस्त्रिंशत् अतिशय सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

अतिशय सुन्दर तन प्रभुवर का, और सुगन्धित सहित पना ।
नहीं पसीना आवे जिनको, मल मूत्रादिक रहित पना ॥
हित-मित वाणी मधुर वचन हों, ऐसे प्रभुवर मन भायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री सौरूप्य, सौरभ, निःस्वेदत्व, निर्मलत्व, प्रियहित-वादित्व गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

अमित शक्ति है धवल रुधिर है, उत्तम शुभ लक्षण वाले ।
तनाकार भी सुडोल जिनका, वज्रमय संहनन वाले ॥
जन्म-समय से इन दश अतिशय, से प्रभुवर शोभा पावें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गावें ॥

ॐ ह्रीं श्री अप्रमित वीर्यत्व, क्षीर-गौर-रुधिरत्व, सौलक्षण्य, समचतुस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, पंच जन्मातिशय गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

कोस चारसौ भूमि पटल में, रहे सुभिक्ष अहिंसा हो ।
होय गगन में गमन प्रभो का, परिकर में ना हिंसा हो ॥
पूज्य केवली कवलाहारी-नहीं रहें यह जिन गायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री सुभिक्षता, गगन-गमन, अप्राणिवध, भुक्ति-अभाव गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं ॥8॥

न होएँ उपसर्ग प्रभो पर, चारों दिशि में मुखदर्शन ।
सब विद्याओं के स्वामी जिन, ना होता छायादर्शन ॥

नहीं आँख की पलकें झपकें, नहीं केश-नख बढ़ पायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री उपसर्ग अभाव, चतुरास्यत्व, सर्वविद्येश्वरता, अच्छायत्व, अपक्ष्मस्पन्दत्व, समप्रसिद्ध-नख-केशत्व गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

अर्धमागधी भाषा सबको, अमृत-समा हि तृप्त करे ।
सब मैत्रीपन बैर हटाये, धर्म-भावना युक्त करे ॥
धुआँ अँधेरा धूलादि बिन, दशों दिशा निर्मल भायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वार्धमागधी भाषा, सर्वमैत्री, दश दिशि निर्मलता गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

गगन सुनिर्मल सब ऋतुओं के-फल पुष्पादिक नित शोभें ।
रत्नमयी दर्पणवत् भूमि, स्वर्णिम दल पे प्रभु शोभें ॥
जय-जय ध्वनि गुंजायमान हो, बहें सुगंधित सुहवायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्मल गगन, सर्व ऋतु फल पुष्पादि दर्शत्व, आदर्शवत् भूमि दर्शत्व, स्वर्णिम कमल, जय-जय ध्वनि, मन्द सुगंधित वायु प्रवाह गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

गंधोदक की होय वृष्टि नित, भूतल की शुभ निर्मलता ।
रहे परम आनंद सभी में, धर्मचक्र आगे चलता ॥
अष्ट महा मंगल की शोभा, प्रातिहार्य-सह प्रभु भायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री गंधोदक वृष्टि, भूतल निर्मलता, सर्वजन परमानंद,

अग्रगामी धर्मचक्र, गुण सह अर्हद्‌भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

स्वस्तिक कलश ध्वजा चामर वा, झारी दर्पण शुभ मंगल ।
पंखा शोभे छत्र प्रभो पर, होय जगत् में नित मंगल ॥
अशोक वृक्ष व सिंहासन हो, छत्र व भामण्डल चामर ।
दिव्यध्वनि व पुष्पवृष्टि हो, देव दुन्दुभि करें अमर ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्ट मंगल व अष्ट प्रातिहार्य गुण सह अर्हद्‌भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

अनंतज्ञ वे जगत् जानते, अनंत-दर्शन साथ रहे ।
हो अरहंत में वीर्य अनन्त, अनंत-सुख परमार्थ रहे ॥
छियालीस इन गुण के धारी, जिन अर्हत् को मन लायें ।
परम विरागी तीर्थंकर की, करें वंदना गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्त चतुष्टय गुण सह अर्हद् भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

तीर्थंकर बननेवाला वह-जीव गर्भ में जब आता ।
छह महिने के पहले से ही, नगर सजाया तब जाता ॥
देव सुदेवादिक वे नित ही, रत्नों की वर्षा करते ।
स्वप्न देखती माता सोलह, सुर जन उत्सव शुभ करते ॥

ॐ ह्रीं श्री गर्भ-कल्याणक गुण सह अर्हद्‌भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

जिस मंगल बेला में देखो, जिन-बालक जन्मे माता ।
देवलोक में घण्टे बजते, सुर-सिंहासन हिल जाता ॥
मधुर वाद्य बजने लगते हैं, मुकुट झुकाकर सुरगण वे ।
नतमस्तक होते हैं उस पल, करें नृत्य शुभ सुरगण वे ॥

ॐ ह्रीं श्री जन्म-कल्याणक गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

सभी तरह के देव यहाँ वे, सह परिवार तभी आते ।
जिन-बालक को ले सुमेरु उस, - पर्वत पर हैं ले जाते ॥
ऐरावत गज सूर्य-समा वह, जिस पर प्रभो सुहाते हैं ।
क्षीरोदधि के निर्मल जल से, प्रभुवर को नहलाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री सुमेरुपर्वते जन्माभिषेक वैभव सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

अलंकार-आभूषण से सुर, प्रभु को खूब सजाते हैं ।
नहीं तृप्ति हैं आखें पातीं, सहस्र नयन बनाते हैं ॥
नहीं खुशी का पार रहे तब, ताण्डव नृत्य रचाते हैं ।
देव-देवियाँ मधुर गान-सह, जन्मोत्सव दिखलाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री देवकृत जन्मोत्सव सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

शुभ निमित्त लख पूर्व पुण्य से, जग-असारता चिन्तन से ।
बन वैरागी दीक्षा लेने, तजें सम्पदा प्रभु मन से ॥
लौकांतिक वे देव यहाँ आ, करें सराहन नमन करें ।
नर विद्याधर सुरगण वन को, उठा पालकी गमन करें ॥

ॐ ह्रीं श्री वैराग्य, दीक्षा-भावना सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

वन में जाकर प्रभु जी सारे, वस्त्राभूषण तजते हैं ।
केशलोंच कर महाव्रतों-सह, निज चेतन में रमते हैं ॥
दीक्षा उत्सव लखकर नर सुर, कर पूजा विधि शमन करें ।
निकटभव्य हैं निश्चित वे सब, धर्मसहित गृह-गमन करें ॥

ॐ ह्रीं श्री दीक्षाकल्याणक गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

घोर तपश्चर्या के द्वारा, कर्म घातिया नाश करें ।
बनें केवली तीर्थंकर वे, अनंत-सुख में वास करें ॥
लोक द्रव्य उनकी पर्यायें, युगपत् झलकें जिनवर में ।
आकर सुरगण पूजें कहते-तव किंकर हूँ जिनवर मैं ॥

ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञान कल्याणक गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

देवेन्द्रों के समूह आकर, समवसरण रचना करते ।
अतिशय सुंदर समवसरण में, भविजन प्रभु-दर्शन करते ॥
दिव्यध्वनि से अपने भव को, पावन पूर्ण बनाते हैं ।
व्रत, संयम को अपनाते हैं, भविजन प्रभु गुण गाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री समवसरण रचना विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 22 ॥

शुभकर सुखकर भव्य मनोहर, समवसरण के वैभव को ।
यहाँ कहूँ मैं भविक-जनों को, सफल बनावें भवि-भव को ॥
प्रति-दिन प्रभु के समवसरण का, सदा सुस्मरण जो करता ।
अगले भव में समवसरण पा, तीर्थंकर जिनवर लखता ॥

ॐ ह्रीं श्री समवसरण वंदन भाव सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 23 ॥

सर्वप्रथम हि-समवसरण में, बना धूलिसाल परकोट ।
द्रव्य सु-मंगल सह देखें भवि, मणिमय व निधिमय परकोट ॥
जिस परकोटे में होते हैं, चार महा गोपुर सह द्वार ।
विजय, वैजयंत व जयंत रु, अपराजित हि हों शुभ द्वार ॥

ॐ ह्रीं श्री परकोटा व चतुर्द्वार समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 24 ॥

धूलिसाल के आगे होती, चैत्यभूमि मंगलकारी ।
जिन चौबीस जिनालय मानस्तंभ शोभते मनहारी ॥
घण्टा, चामर, ध्वज सह शोभित, स्वर्णिम जिन की प्रतिमाएँ ।
क्षीरोदधि के जल से पूजें, सुरगण प्रभु के गुण गाएँ ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्यभूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 25 ॥

लय-सौम्यमूर्ति गुरु लोक हितैषी.......

मानस्तंभों की चउ दिशि में, सुन्दर बावड़ियाँ होतीं ।
भविकजनों के देह-मैल सह, कर्म-मैल मानो धोतीं ॥
चैत्यभूमि के चारों दिशि में, आगे प्रथम वेदिका हो ।
गोपुर द्वारों पर शुभ निधियाँ, द्रव्य मांगलिक शोभा हो ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुः मानस्तम्भ, वेदिका समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 26 ॥

द्वितीय उत्तम निर्मल जल से, भरी खातिका वह भूमि ।
तीर्थंकर की ऊँचाई से, चतुर्थ भाग गहरी भूमि ॥
मणियों से वह खचित मनोहर, स्वर्णिम कमलों से सुंदर ।
नभ-सम उत्तम दिखती निर्मल, दर्पण-सम लगती सुंदर ॥

ॐ ह्रीं श्री खातिका भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 27 ॥

इसके आगे दूजी वेदी, प्रथम वेदिका-समवाली ।
जिसके आगे तृतीय भूमि हि, लता-भूमि पुष्पोंवाली ॥
विविध सुगंधित पुष्प गंध को, चारों दिशि में फैलाते ।
पक्षी सुंदर शब्द करें वा, भ्रमर जहाँ गुन-गुन गाते ॥

ॐ ह्रीं श्री लता भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 28 ॥

लता-भूमि से आगे स्वर्णिम, द्वितीय परकोटा होता ।
विजयादि गोपुर द्वारों से, चौ दिशि में शोभित होता ॥
तोरण छत्र चमर आदिक से, जिन-महिमा प्रकटित करता ।
दो-दो नाट्य बनी शालाएँ, खुशी नृत्य होता रहता ॥

ॐ ह्रीं श्री परकोटा, तोरणादि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 29 ॥

चौथी उपवन भू वह आगे, अशोकादि वृक्षों वाली ।
मुख्य तरु पर जिन-प्रतिमाएँ, महा पुण्य देने वालीं ॥
प्रतिमा जिनकी मुनि, नृपजन सब, वंदन पूजन करते हैं ।
बावड़ियों में जो मुख देखें, सप्त भवों को लखते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उपवन भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 30 ॥

नाट्य निलय सह तीजी वेदी, वज्रमयी लगती सुन्दर ।
घेरे है वह वन-समूह को, पहरा देते सुर सुन्दर ॥
चार वीथियों से आगे जा, पंचम ध्वज-भूमि मिलती ।
सिंह, वृषभ, गजादि चिह्नों सह, चित्र विचित्र ध्वजा खिलती ॥

ॐ ह्रीं श्री ध्वज भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 31 ॥

यहाँ तीसरा परकोटा जो, रक्षक देवों से शोभित ।
जिसके आगे छठवीं भू जो, सुंदर कल्पद्रुम सुरभित ॥
मनवाञ्छित सु-वस्तु-प्रदाता, वृक्ष जहाँ जिन भी शोभें ।
जिनवर की थुदि पूजा कर वे, मुनिगण सुरगण मन मोहें ॥

ॐ ह्रीं श्री कल्पवृक्ष भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 32 ॥

खुशी-खुशी जो सुन्दरियाँ वे, नाट्यगृहों में नृत्य करें ।
चौथी वेदी कही जहाँ पर, सुर रक्षा भी नित्य करें ॥
इसके आगे सप्तम भू जो, भवन-भूमि है कहलाती ।
पुण्य-पाप का फल दर्शाती, धर्म-मार्ग है सिखलाती ॥

ॐ ह्रीं श्री भवनभूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 33 ॥

शुभ इन्द्रध्वज भवन-भूमि पर, जिन-महिमा है दर्शाता ।
बजें घण्टियाँ टन-टन झन-झन, ध्वज रत्नांकित मन भाता ॥
बड़े-बड़े स्तूप खड़े जहँ, तीन लोक के वैभव को ।
सदा दिखाते, तत्त्व बताते, देख भूलते भवि भव को ॥

ॐ ह्रीं श्री इन्द्रध्वज, स्तूप समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 34 ॥

रत्न जड़ित शुभ संस्तूपों में, मणिमय जिन की प्रतिमाएँ ।
सदा शोभती पाप नशाती, भवि मुनिजन नित गुण गायें ॥
जिसके आगे मणि स्फटिक से, बना चतुर्थ हि परकोटा ।
मरकत मणि के द्वार सहित वह, सुरगण-रक्षित परकोटा ॥

ॐ ह्रीं श्री मणिमय प्रतिमाएँ समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 35 ॥

इन्द्राज्ञा पाकर कुबेर से, परम रचित यह समवसरण ।
तीनलोक का अद्भुत वैभव; जिन मुनि गणधर जहाँ शरण ॥
भगवन् सम्मुख अष्टम भू जो, मण्डप सुभूमि कहलाती ।
धर्म-सभाएँ प्रभो चरण में, कमल-दलों-सम मन भातीं ॥

ॐ ह्रीं श्री मण्डप भूमि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 36 ॥

पहले कोठे में मुनि दर्शन, आगे कल्पवासनी हों ।
तृतीय कोठे में सु-आर्यिका, जहाँ हि गृहनिवासनी हों ॥
चौथे में ज्योतिष्क, देवियाँ, व्यंतर देवी-पंचम में ।
छठे में देवि भवनवासिनी, भवनवासि सुर-सप्तम में ॥
अष्ठम कोठे में व्यन्तर-सुर, नौ में ज्योतिष देव-जहाँ ।
कल्पवासि वे देव दसम में, आगे नर निर्वेग जहाँ ॥
बारहवें उस कोठे में वे-सम्यक्त्वी पशु हैं बसते ।
पूर्ण विनय से प्रभु को नमते, समवसरण में भवि लसते ॥

ॐ ह्रीं श्री द्वादश सभा समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 37 ॥

समवसरण में पुरुषवेद को, प्रमुख बताकर सभा कही ।
जिनके ऊपर पंचम वेदी, त्रि- कटनी भी वहाँ रही ॥
मणि स्फटिक से युत वेदी है, फिर पहली कटनी होती ।
सजी हुई वैडूर्यमणी से, द्वादश सीढ़ी युत होती ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम कटनी समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 38 ॥

जिस कटनी की चारों दिशि में, धर्मचक्र शोभा पावें ।
तीर्थंकर से कथित धर्म को, भविजन शीघ्र हि अपनावें ॥
इस पहली कटनी तक भविजन, जा प्रभु का दर्शन करते ।
दे प्रदक्षिणा प्रभु को नमते, अर्घ्य सदा अर्पण करते ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मचक्र समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 39 ॥

बैठ सभा में भविजन सारे, अपना जीवन धन्य करें ।
महा तृप्ति का अनुभव करते, धन्य प्रभो जिन धन्य कहें ॥
दिव्यध्वनि सुन कोटि जन्म के, पापों का हैं क्षय करते ।
अमृतवाणी पीकर भविजन, सब जीवन सुखमय करते॥

ॐ ह्रीं श्री दिव्यध्वनि समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥40॥

सहस्र सूर्य व चन्द्रों से भी, अधिक तेज जिनमें होता ।
तीन लोक में सबसे सुन्दर-पूर्ण दर्श जिनमें होता ॥
भव्य कमल-दल विकसित करने-वाले महा सूर्य भगवन् ।
शान्ति-सुदायक शशि-सम भी हैं, अतः पूजते हैं मुनिजन॥

ॐ ह्रीं श्री सहस्र सूर्य चन्द्रादिक शोभा सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥41॥

स्वर्णमयी है द्वितीय कटनी, आठ-आठ सीढ़ी जिसमें ।
सिंह वृषभ आदिक चिह्नों सह, ध्वजा अष्ट फहरें जिसमें ॥
द्रव्य महामंगल-आठों से, शोभा जिसकी न्यारी है ।
तृतीय कटनी गंधकुटीयुत, अतिशय लगती प्यारी है॥

ॐ ह्रीं श्री द्वितीय कटनी समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥42॥

छत्र चमर बंधन माला से, तथा मोतियों हारों से ।
चौ दिशि में जो सजी हुई है, रत्न सुपूर्ण सितारों से ॥
रविमंडल-सम गोल बनी है, अन्तिम कटनी मनहारी ।
कटनी ऊपर गंधकुटी में, कमल रहा, शोभा प्यारी ॥

ॐ ह्रीं श्री तृतीय कटनी व सिंहासन समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥43॥

सहस्र दली व सिंहासन पर, तीर्थंकर जिनवर शोभें ।
नर-सुर आदिक जय हो, जय हो- कहें शरण मम प्रभु होवें ॥
नाशाग्रदृष्टि परम विरागी, सह प्रभुवर मंगलकारी ।
जग अलिप्त विभु साम्य-धनी हो, दर्शन चउ दिशि शुभकारी॥

ॐ ह्रीं श्री सहस्र दल कमल समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥44॥

प्रभु-सिंहासन परमेष्ठी-पद-की शोभा को बिखराता ।
चमर ईशता के वैभव को, इस जग में है बतलाता ॥
छत्र-त्रय वह तीन लोक के, स्वामी-पन को दिखलाता ।
भामण्डल वह महा कांति की, सुन्दरता को बतलाता॥
अशोक तरु वह शोक नशाने, की सुशक्ति है दर्शाता ।
पुष्पवृष्टि मय पूजा से वह, पूजितपन मन को भाता ॥
दिव्यध्वनि वह सब हितकर्त्ता-पन को प्रकटित करती है ।
वाद्य ध्वनि वह सुखकर-पन की, शक्ति सु अनुपम कहती है॥

ॐ ह्रीं श्री अष्ट प्रातिहार्य समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥45॥

तीर्थंकर के समवसरण में, नहीं वैर-भावन होती ।
राग, द्वेष, मद, भूख न निद्रा, सदा साम्य-भावन होती ॥
गाय, सिंह भी एक जगह पर, बैठ धर्म को सुने जहाँ ।
धन्य विरागी इक दिन बन हम, तीर्थंकर-जिन बनें महा॥

ॐ ह्रीं श्री अतिशय महिमा समवसरण विभूति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥46॥

लोकपूज्य हैं अतः जगत् में, वे अरहंत कहे जाते ।
कर्मशत्रु को किया पराजित, तब अरिहंत कहे जाते ॥

नहीं जन्म है होगा जिनका, उनको अरुहन् पहचानो ।
सदा लीन हो अर्हत् पद में, मिले शीघ्र सुख तुम जानो॥

ॐ ह्रीं श्री अरिहंत स्तुति सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥47॥

परम विरागी अर्हत् स्वामी, जन्म जरा उन मरणों से- ।
दूर करो, मम लगन लगी है, प्रभुवर तव शुभ चरणों से ॥
तीन लोक में रक्षा करने-वाला प्रभु का दया धरम ।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम॥

ॐ ह्रीं श्री जन्म, जरा, मृत्यु विनाश सामर्थ सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥48॥

यथा धान्य का छिलका निकले, और ललामी भी जाये ।
तभी गंध फूटे चाँवल से, अरु मीठापन भी भाये ॥
बाह्याभ्यंतर संग रहित सुख-पाया छूटे घाति-करम ।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम॥

ॐ ह्रीं श्री बाह्याभ्यंतर संग रहित अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥49॥

जग-आशा से विरहित जिनवर, नाशाग्रदृष्टि धारी हैं ।
चन्दन, पुष्पों, श्रृंगारों अरु आहारों के त्यागी हैं ॥
जग-विषयों से उदासीन बन, हम पायें प्रभु-पाद वरम् ।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम्॥

ॐ ह्रीं श्री चंदन, पुष्पादि अलिप्त गुण सह अर्हद् भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥50॥

मोक्ष-प्राप्ति हेतु हे प्रभुवर!, समवसरण का त्याग करें ।
योग-प्रवृत्ति रुके केवली, परम-शुक्ल सु-ध्यान धरें ॥

चार अघाति-कर्म नाशकर, जाकर सिद्धालय बसते ।
तन कपूर के सदृश बिखरे, लोक-अग्र में जिन लसते ॥

ॐ ह्रीं श्री चउ अघाति कर्म रहित अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 51 ॥

देवेन्द्रों के समूह आकर, प्रभुवर की पूजा करते ।
मुकुटानल से नख केशों को, भस्म पूर्ण सुरजन करते ॥
सिद्ध बने हैं तीर्थंकर विभु, अनन्त गुण से शोभित हों ।
परम-सुखी-पद पाने नर-सुर, तव शिवपद से लोभित हों ॥

ॐ ह्रीं श्री मोक्षकल्याणक गुण सह अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 52 ॥

अक्षय-पद को पाया प्रभु ने, सदा सुखी जयवन्त हुए ।
यथा दुग्ध से घृत बन जाता, तथा विशुद्ध अनंत हुए ॥
सिद्धालय में जा पहुँचे फिर, नहीं लोक में पायें जनम ।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम ॥

ॐ ह्रीं श्री अक्षय-पद प्रदायक अर्हद्भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 53 ॥

जयमाला

लय- गुरु की छाया ऽऽऽ........

तीर्थंकर-पद पाया जिनने, समवसरण के बने धनी ।
वर्तमान की चौबीसी में, तीन लोक के बने गुणी ॥
ऋषि यति मुनि अनगार मुनीश्वर, वृषभसेन आदिक गणधर ।
जिन्हें पूजते थे निश-दिन हि, उनकी थुति करता मनहर॥
देवों से भी पूज्य वृषभ-जिन, सब दुखियों के दुखहर्ता ।
कर्म-शत्रु को जीत लिया है, अजितनाथ सुख के कर्त्ता ॥

समता दायक संभव जिन हे ! तव पद हैं प्रभु नाथ शरण ।
शीघ्र मोक्षपद मिले अतः मैं, सदा नमूँ तव समवसरण॥
सब मुनियों से वंदित जिनवर - अभिनंदन हो भवि प्यारे ।
कुमति नाशकर सन्मति देवें, सुमतिनाथ जग में न्यारे ॥
भव्य कमल को विकसित करने,पद्म प्रभु हे ! पूज्य शरण ।
कर्म नाशकर शिव पाऊँ मैं, अतः नमूँ तव समवसरण॥
जित-इन्द्रिय हो सुपार्श्व जिन हे ! भविक जनों के हो स्वामी ।
मिथ्यातम को नाश करें नित, जिन चन्द्रप्रभु हे ! स्वामी ॥
कर्म-कालिमा दूर करें जो, पुष्पदंत जिन सदा शरण ।
मोक्ष महापद चाहूँ निश-दिन, नित्य नमूँ तव समवसरण॥
विषय-दाह को शमन करें जो, शीतल जिनवर गुणनामी ।
श्रेय-धर्म के मार्ग-सुदर्शक, श्रेय जिनेश्वर शिवधामी ॥
तीन लोक में महापूज्य हे! वासुपूज्य तव पाद शरण ।
सिद्धालय वह मुझे मिले बस, अतः नमूँ तव समवसरण॥
अमल बने हो पाप-कर्म तज, विमलनाथ हे परमेश्वर ।
अनंत बल से सहित हुए हो, हे अनंत जिनवर ईश्वर ॥
ध्वजा धर्म की फहराने उन, धर्मनाथ की गहें शरण ।
मोक्ष-सम्पदा पाने पूजूँ, हे! जिनवर तव समवसरण॥
जगत्-शान्ति के कर्त्ता प्रभुवर, शान्तिनाथ तुम सद्दर्शी ।
शम, दम के तुम धनी जिनेश्वर, कुंथुनाथ शिवमगदर्शी ॥
भव-भोगों के त्यागी उत्तम, अरहनाथजी लोक शरण ।
भविक भक्ति को चाहें नित ही, अतः नमें तव समवसरण॥
महा श्रमण हे ! तीर्थ सुनायक, मल्लिनाथ हे ! सुखधामी ।
मुनिजन के हे ! व्रत उपदेशक, मुनिसुव्रत जग के स्वामी ॥

जगत्-दुखों के तारक नमि जिन, अशरण के तुम सदाशरण ।
मोक्ष-महाफल मिले शीघ्र ही, अतः पूजते समवसरण॥
अनेकांत के प्रस्तोता हे ! नेमिनाथ जिन साधु परम !
उपसर्गों के जेता प्रभुवर, पार्श्व जिनेश्वर जगत्वरम् ॥
बाल-ब्रह्मचारि हो पंचम, महावीर-जिन तीर्थ शरण ।
परम अहिंसा धर्म मोक्ष दे, सदा नमूँ तव समवसरण॥
तीर्थंकर जय, समवसरण जय, भवि मुनिजन को सदा शरण ।
समवसरण से सम्यग्दर्शन, मिले ज्ञान शुभ सदा चरण ॥
अष्ट भूमियाँ धर्म सभायें, जिनवर-मुनिवर-तीर्थ शरण ।
गन्धकुटी में प्रभुवर शोभें, हृदय विराजे सदा-चरण॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥54॥

दोहा

करें भक्ति अरिहंत की, जहाँ पाप धुल जाय।
करें भक्ति अरिहंत की, महा जाप मिल जाय।।

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्ति भावनायै नमः।

•••

11. आचार्य-भक्ति भावना

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

बारह तप अरु षट् आवश्यक, पंचाचार व धर्म दशों।
गुप्ति त्रय से युक्त रहें वे, धर्म बताते दिशा दशों।।

शिष्यगणों को निर्दोषी जो, सदा बनाते उत्तम हैं।
उपकारी वे धर्म-धनी वे, पाते सुख परमोत्तम हैं।।

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

लय- पारस नाम बड़ा...

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥

चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
आचार्यों की भक्ति को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
चर्या सह आचार्य हैं, सदा करें उपकार।
चर्या सह आचार्य वे, सदा हरें अपकार ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं

निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

लय-गुरुवर के चरणों में अच्छा लगता है...

दर्शन-बोध-चरित-तप जिनके, अरु वीर्य ये पंचाचार ।
पालें, शिष्यों को बतलाते, मोक्ष-मार्ग सु-धर्माचार ॥
दीक्षा-शिक्षा देनेवाले, सूरि रहे वे गुणधामी ।
पूज्य रहे सब शिष्यगणों के, ख्यात देश में शुभनामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचाचार सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

क्रोध भाव के जगने में यदि, हो प्रत्यक्ष बाह्य कारण।
तो भी किञ्चित क्रोध न आवे, क्षमा भाव का हो धारण।।
समता रखकर मुनिवर वे सब, उपसर्गों को सह लेते।
परिषह सहते कर्म खपाते, उत्तम शिव सुख गह लेते॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

रूप, जाति, कुल, ज्ञान, तपों का, तथा शील का किञ्चित भी।
गर्व नहीं करता जो साधक, पाप बंधें न किञ्चित भी॥
ऐसा यति वह मार्दव धर्मी, मोक्षमार्ग में लीन रहे।
कर्म नाश कर शुद्ध बने फिर, मिलता सुख स्वाधीन रहे॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम मार्दव गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

कुटिल भाव को छोड़ साधु जो, निर्मल मन सह रहता है।
उसके आर्जव धर्म कहा है, अन्तर सुख को गहता है॥

नहीं छुपाये दोष कभी भी, परिमार्जित आतम करता।
माया-त्यागी दृढ़ वैरागी, गुणधर्मी शिवपद लहता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम आर्जव गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

पर संतापों के कारण उन, वचनों को ना मुनि कहते।
वे तो निज-पर के हितकारक, जिन वचनों को मित कहते।।
सज्जन लोगों के आगे मुनि, भाषा समिति सह बोलें।
धर्म मार्ग की करें प्रभावन, वाणी में अमृत घोलें॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम सत्य गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

श्रेष्ठ साधु वे कांक्षा विरहित, जग इच्छाओं के त्यागी।
भाते वे वैराग्य भावना, शौच धर्म के हैं भागी।।
प्रकर्ष ना वे लोभ धारते, धरें भावना पावन वे।
विषय वासना दूर भागती, ऐसा जीते जीवन वे॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम शौच गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

मन, वच, तन की त्याग प्रवृत्ति, इन्द्रिय विजयी जो बनते।
पञ्च महाव्रत तथा समितियाँ, पालन में वे रुचि रखते।।
ऐसे मुनि के सदा नियम से, संयम धर्म कहा जाता।
संयम पथ ही पाप बंध से-बचा मोक्ष को ले जाता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम संयम गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

ध्यान और स्वाध्याय करें मुनि, विषय, कषाय दूर करते।
तभी आतमा के चिन्तन में, नित्य मुनीश्वर वे रमते।।

बारह तप को तपने वाले, मुनिवर के तप धर्म कहा।
आत्म शुद्धकर मोक्ष दिलाता, धन्य वही जिन धर्म रहा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम तप गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

सब द्रव्यों से मोह त्याग कर, तीन तरह निर्वेद रहे।
भव, शरीर व भोगों में ना, राग कभी ना खेद रहे।।
संयत लोगों को करते जो, ज्ञान सु दान अपरिमित हैं।
ऐसे मुनि वे शिव सुख पाने, त्याग धारते नियमित हैं॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम त्याग गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

बाह्याभ्यन्तर सभी परिग्रह, छोड़े यति निस्संग रहा।
भव में सुख-दुख देने वाले, भाव रोकना अंग रहा।।
सदा विचरता निर्द्वन्दी यति, समता रखता जीवन में।
आकिञ्चन्य धर्म होता उस, अनगारी के जीवन में॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम आकिंचन्य गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 10॥

जो मुनि अबलाओं को लखकर, या उनके सब अंगों को।
नहीं राग जगता है जिसके, तजता मोह प्रसंगों को॥
वह मुनि दुर्धर ब्रह्मचर्य को, धारण हेतु समर्थ रहा।
आत्म ब्रह्म में रमण करे वह, मोक्ष मिले यह अर्थ रहा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम ब्रह्मचर्य गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥11॥

सदा हृदय में दया भावना, धारें हिंसा त्याग करें।
षट्कायिक जीवों की हिंसा, राग, द्वेष परिहार करें।।

द्रव्य तथा भावों की हिंसा-त्याग, साधु वे रहे सुजन।
ऐसे मुनि आचार्य देव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री अहिंसा महाव्रत गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 12॥

पृथ्वी-सम जो क्षमाशील हैं, शूरवीर हैं जिनपथ में ।
अनेकांत की गर्जन करते, धर्म बढ़ाने जिनपथ में ॥
जो संवेग बढ़ानेवाले, सम्यक् श्रुत का करें कथन ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री सत्य महाव्रत गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 13॥

स्वप्नकाल में भी मुनिजन पर-किसी वस्तु को ना चाहें ।
सब आशाएँ छोड़ साधु नित, आतम में रमना चाहें ॥
तिय मात्र को मात, सहोदरी-सम वे समझें योग्य श्रमण।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री अचौर्य व ब्रह्मचर्य महाव्रत गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 14॥

मात्र पिच्छिका और कमण्डल, तथा ज्ञान-उपकरण रहें।
ना वाहन ना धन वैभव अरु, नहीं वस्त्र आभरण रहें ॥
नग्न दिगम्बर वीतराग बन, कर्म-शत्रु का करें शमन ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रह महाव्रत गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15॥

दिन में चार हाथ पृथ्वी लख, धर्म-कार्य-वश चलें गुणी ।
भव्यजनों से उपकारी उन, वचनों को ही कहें गुणी ॥

सुकुल सुगृह में गहें अशन कर-छियालीस हि दोष त्यजन् ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री ईर्या, भाषा, एषणा समिति गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

उपकरणों को गहें रखें तब, जीव बचा रक्षा करते ।
जब मलादि का त्याग करें तब, निर्जन्तुक पृथ्वी लखते ॥
पंचेन्द्रिय के विषयों को तज, राग, द्वेष का करें हनन ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापन समिति व पंचेन्द्रिय निरोध गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

मुनिवर दो से चार माह के, बीच केश लुंचन करते ।
नग्न धारते रूप सदा वे, वस्त्रादिक मोचन करते ॥
खुजली चले पसीना आवे, तो भी स्नान न करें श्रमण ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री केशलुंचन, नग्नत्व, अस्नान गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

भूमि शिला व काष्ठ पे करवट-से निशि में कुछ शयन करें ।
साधु निराश्रय खड़े हाथ में, दिन में ही इक अशन करें ॥
अदन्त-धावन षट्-आवश्यक, समतादिक को करें श्रमण ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री भूशयन, स्थिति भोजन, एक भुक्ति, अदन्त धावन गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

मन-वच-तन की निश्चलता से, कर्माश्रव ही रुक जाता।
तब चिरकालिक बंधा हुआ वह, कर्म बंध भी गल जाता।।

नहीं उदय में आ करके फिर, फलित कभी भी होता है।
स्वस्थ स्वयं में होकर योगी, शिव में शोभित होता है॥

ॐ ह्रीं श्री त्रय गुप्ति गुण सह आचार्य भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

जयमाला

लय : ओ पालनहारे......

परमागम के बड़े विशारद, नभ-सम जो निर्लेप रहे ।
महाव्रतों की रक्षा करते, कभी न मन में क्लेश रहें ॥
निर्ममता निष्परिग्रहता व, निर्भयशाली धीर गुणी ।
शिष्य-संघ से शोभित होते, मम गुरुवर जो वीर गुणी॥
सौम्यमूर्ति गुरु लोकहितैषी, सुख के कर्त्ता दुखहर्ता ।
जो भवि चलता गुरुकदमों पर, सुख पाता जग से तिरता ॥
संयम व्रत धारण करने हम, मुनि गुरुवर की गहें शरण ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥
देश जाति वा कुल आदिक से, शुद्ध पूर्ण जो मुनिवर हैं ।
शिष्यों के पालन-पोषण में, कुशल रहे जो यतिवर हैं ॥
ज्ञान-वृद्ध वे तपो-वृद्ध जो, परिमित कहते योग्य वचन ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥
परमातम के सदा ध्यान से, प्रवचन के शुभ सागर से ।
बनी आत्मा जिनकी निर्मल, तथा दूर भव-सागर से ॥
महाविरागी संयमधारी, सद् ध्यानों में जिनका मन ।
ऐसे मुनि आचार्यदेव को, सदा भक्ति से करें नमन॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्ति भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

दोहा

सूरि गुणी शुभ नाम से, जन ये मंगल गाय।
सूरि गुणी शुभ धाम हैं, वन में मंगल भाय॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत्॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री आचार्यभक्ति भावनायै नमः।

•••

12. बहुश्रुत-भक्ति भावना

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- थोड़ा ध्यान लगा...

द्वादशांग के ज्ञाता बनकर, मोक्ष-सुदाता शिवपथ में ।
ज्ञान बताते तथा बिठाते, भविजन को जो शिवरथ में ॥
ज्ञान, ध्यान में लीन सदा वे, करें प्रवृत्ति सीमित हैं ।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्तिभावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥

राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल ॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल ॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल ॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
राग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
उपाध्याय की भक्ति को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
राग ज्ञानी ज्ञानी कहें, वह दुख का है मूल।
त्याग ज्ञान ज्ञानी कहें, वह सुख का है चूल॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- धन्य मुनीश्वर.....

एकादश उन आचारादिक, अंगों से जो सहित रहें।
तथा चतुर्दश उत्पादादिक, पूर्वों से भी लसित रहें॥
रहे केवली श्रुत के जो हैं, अतः सुरों से वंदित हैं।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥

ॐ ह्रीं श्री एकादश अंग, चतुर्दश पूर्व सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1॥

महापुरुष या पुण्य पुरुष के, धर्म-गुणों को जो गाती ।
कर्म-योग से पीड़ित जन को, सुमार्ग दे समता लाती ॥
मिले प्रथमानुयोग से बोधि-समाधि यह भावन भायें ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथमानुयोग ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

तीन लोक में कहाँ कौन है, जिसमें जाना जाता है ।
जीवों के उन भावों को भी, जिसमें गाया जाता है ॥
जान भविक करणानुयोग को, शुभ भावों को मन लायें ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥

ॐ ह्रीं श्री करणानुयोग ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

मुनि, श्रावक के शुभाचार की, उन्नति रक्षा जिससे हो ।
संयम, व्रत उस तपाचार की, परिमलता भी जिससे हो ॥
उस चरणानुयोग के सेवक, निश-दिन ही हम बन जाएँ ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥

ॐ ह्रीं श्री चरणानुयोग ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

सप्त तत्त्व अरु पुण्य-पाप की, जिसमें चर्चा होती है ।
भव-बंधन से जहाँ मोक्ष की, पाने अर्चा होती है ॥
वह द्रव्यानुयोग परमागम, पढ़ते प्रति-दिन हम जाएँ ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥

ॐ ह्रीं श्री द्रव्यानुयोग ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

दोहा

अर्त्तिभाव ही आर्त है, जिसका दु:ख है नाम।
अशुभ बंध, हो दुर्गति, बिगड़े धर्म सु-काम॥

ॐ ह्रीं श्री आर्त्तध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

रुद्र भाव ही रौद्र है, क्रूर उठें परिणाम।
जिसको भी तजना कहूँ, तभी होय शुभ ध्यान॥

ॐ ह्रीं श्री रौद्रध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

आर्त्त, रौद्र को त्याग कर, करें धर्म-मय ध्यान।
राग-द्वेष वा पाप बिन, सामायिक पहिचान॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

पदस्थ अरु पिंडस्थ वा, हैं रूपस्थ सु-ध्यान
रूपातीत महान ये, शिव-सुख दें कल्याण॥

ॐ ह्रीं श्री संस्थान विचय धर्मध्यान भेद स्वरूप ज्ञानयुत बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

मंत्र वाक्य का ध्यान हो, वीतराग शुभ रूप।
पदस्थ जानो ध्यान वह, हो एकाग्र स्वरूप॥

ॐ ह्रीं श्री पदस्थ ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥10॥

निजात्म के सम्बन्ध से, सद्गुण-गण का ध्यान।
कहा ध्यान पिंडस्थ वह, जिसमें निज कल्याण॥

ॐ ह्रीं श्री पिंडस्थ ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥11॥

मध्यलोक है क्षीर सम, सागर शान्त स्वरूप।
जम्बूद्वीप सहस्रदल, इक लख योजन रूप।।
वहाँ कर्णिका मध्य में, श्वेतासन शुभ रूप।
जहाँ विराजित आतमा, बन निर्ग्रंथ स्वरूप॥

ॐ ह्रीं श्री पृथ्वी धारणा स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

निज नाभि में ऊर्ध्व मुख, स्वर्णिम दल शुभ मान।
सोलह पांखुडी स्वर बसें, मध्य बसे र्हं जान।।
अधो मुखी हिय मध्य में, कमल विराजित सोह।
अष्ट पांखुड़ी कर्म की, दहें ध्यान र्हं होह॥

ॐ ह्रीं श्री अग्निधारणा स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

कर्म राख को तीव्र वह, मारुत करती साफ।
मेघों के उस नीर से, थल भी धुलता आप॥

ॐ ह्रीं श्री वायु व जल धारणा स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

यह शुद्धात्म अजीव से, भिन्न सिद्ध है जीव।
परम तत्त्व दर्शन तथा, ज्ञान सहित मम-जीव॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्व धारणा स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

आत्म सर्व चिद्रूप है, ज्ञान मयी सुविचार।
ध्यान रहा रूपस्थ यह, यतिओं को स्वीकार॥

ॐ ह्रीं श्री रूपस्थ ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

निष्कलंक त्रयकाल निज, शुद्ध निरंजन एक।
चिंतन रूपातीत है, ध्यान करें मुनि नेक॥

ॐ ह्रीं श्री रूपातीत ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 17 ॥

अर्थ व्यंजन योग का, परिवर्तन जब होय।
श्रुत में ऊहापोह हो, शुक्ल ध्यान अथ होय॥

ॐ ह्रीं श्री पृथक्त्ववितर्क विचार शुक्ल ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 18 ॥

एक योग में थिर रहे, श्रुत का मन्थन होय।
शुक्ल ध्यान फिर दूसरा, केवलज्ञानी होय॥

ॐ ह्रीं श्री एकत्ववितर्क अविचार शुक्ल ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 19 ॥

काययोग बस जब रहे, न प्रतिपाती होय।
केवल ज्ञानी आत्मा, परमातम सम जोय॥

ॐ ह्रीं श्री सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती शुक्ल ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 20 ॥

बने अयोगी आतमा, सर्व निवृत्ति होय।
सर्व कर्म बिनसें तभी, क्षण में मुक्ति होय॥

ॐ ह्रीं श्री व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान स्वरूप ज्ञान सह बहुश्रुत भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 21 ॥

जयमाला

लय-वर्तमान में वर्द्धमान की.....

वीतराग उन सिद्धदेव की, स्तुति करते हों तल्लीन ।
निज में शुक्लध्यान से साधु, स्व समतासुख में स्वाधीन ॥

परिषह सहते सकलरूप से, मोक्षमार्ग में शोभित हैं ।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥
त्यागे अम्बर सदा दिगम्बर, जंगल में जो वास करें ।
विषय-वासना दूर भागती, जहाँ हि चेतन वास करें ॥
सदा उदासी राग-रंग में, निज चिंतन में सुनिरत हैं ।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥
श्रुत का सागर जिनके मन में, सदा हिलोरें लेता है ।
भव-इच्छाएँ और कषायें, पूर्ण शांत कर देता है ॥
इष्ट-मिष्ट स्व वचनों से जो, सत् हित करें अपरिमित हैं ।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥
संघ सु-नायक मग दर्शायक, बोध सु-दायक साधु जहाँ ।
विहार करते पावन होती, धरती मंगलपूर्ण वहाँ ॥
आगमपथ का भव्य जनों को, प्रवचन दें जो हित-मित हैं ।
उपाध्याय हि बहुश्रुतधारी, द्वादशाङ्ग-सह पूजित हैं॥

ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्ति भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥22॥

दोहा

बहु श्रुत की वंदन जहाँ, आय ध्यान युत ज्ञान।
बहु श्रुत की वंदन वहाँ, जाय मान युत ज्ञान॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुतभक्ति भावनायै नमः।

•••

13. प्रवचन - भक्ति भावना

॥ स्थापना॥

(ज्ञानोदय छन्द)

वीतराग मय जिनवर से जो, निकली हितकर जिनवाणी।
भवसागर से पार उतरने, नौकासम है कल्याणी।।
धारें भविजन जिसे हृदय में, भवसागर से तिर जाएँ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल॥

लय- जीवन है पानी की बूंद...

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥

हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
प्रवचन की सद्भक्ति को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
हो प्रवचन अर्चन जहाँ, ज्ञान आय दुख जाय।
हो प्रवचन अर्चन वहाँ, मान जाय सुख आय॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- ओ! मेरे गुरुवर...

अनेकांतमय सप्तभंग से, मिथ्यातम हट जाता है ।
सारा विभ्रम मोह नाश हो, भव-दुख भी मिट जाता है ॥
स्याद्वाद के सागर में हम, आतम को नित नहलायें ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री अनेकान्त रूप सप्तभंग सह प्रवचन भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1॥

कर्म नाशकर चारों गति से- पार हुए इन्द्रिय तजके ।
षट् कायिक वा योग, वेद तज, कषाय-विजयी शिव भजके ॥
अष्ट ज्ञान न, इक केवल वे-ज्ञान सहित हि; संयम पार ।
दर्शन में केवल के धारी, नहीं लेश्या सौख्य अपार ॥
भव्य भाव से परे मोक्ष में, क्षायिक इक सम्यक्त्व रहा ।
ना सैनी आहार मार्गणा, आतम-सुख से पूर रहा ॥
गुणस्थान भी मिथ्यादृष्टि, सासादन जो मिश्र कहे ।
अविरतिदर्शी अणुव्रती अरु, भव में आत्म प्रमत्त रहे ॥

जागृत हो अप्रमत्त आत्मा, अपूर्वकरण अनिवृत्ति गुण ।
तथा सूक्ष्म-साम्प्रायी उपशम-मोह स्वरूप विरक्ति गुण ॥
क्षीणमोह व सयोगकेवली, अयोग केवली पूज्य महा ।
गुणस्थान तज, शिव-मंजिल पा, ना सोपान हि रहे जहाँ ॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गणा, गुणस्थान विरहित सिद्ध वर्णन सह प्रवचन भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

जीव रहा व्यवहार दशा में, त्रिकाल में चौ प्राणों सह।
आयु श्वासोच्छवास इन्द्रिय, बल भी जानो प्राणों सह॥
निश्चयनय से जिसके चेतन, दर्श, ज्ञान हि रहते प्राण।
कर्माश्रित प्राणों से विरहित, उस चेतन का हो निर्वाण॥

ॐ ह्रीं श्री जीव द्रव्य स्वरूप सह प्रवचन भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

तथाहि पुद्गल, धर्म, अधर्म, अरु आकाश, काल जानो।
अजीव द्रव्य हैं चेतन विरहित, रूपवान पुद्गल मानो॥
रूपवान है पुद्गल मूर्तिक, शेष रूप बिन रहे सभी।
अतः अमूर्तिक कहलाते हैं, न नयनों से दिखें कभी॥

ॐ ह्रीं श्री अजीव द्रव्य स्वरूप सह प्रवचन भक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

गमन सुपरिणत पुद्गल जीवों, को सहकारी जो बनता।
धर्म द्रव्य उसको पहचानो, ऐसा जिन आगम कहता॥
जैसे मछली के चलने में, जल निमित्त बनता जानो।
नहीं चलाये रुकते को वह, धर्म हठी न पहिचानो॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म द्रव्य स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

रुकने वाले पुद्गल, जीवों, को सहकारी जो बनता।
उसे अधर्म द्रव्य पहचानों, ऐसा जिन आगम कहता॥
जैसे छाया पथिक जनों को, रुकने में सहकारी हो।
नहीं रुकाये चलते को वह, अधर्म; ना हठकारी हो॥

ॐ ह्रीं श्री अधर्म द्रव्य स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

जीवादिक सब द्रव्यों को जो, दे अवकाश समर्थ रहा।
कहते जिनवर नभ है जानो, विश्वमयी यह अर्थ रहा॥
रहे भेद हैं जिस नभ के द्वि, लोक, अलोक सदा जानो।
है अनन्त आकाश, लोक फिर, चौदह राजू पहचानो॥

ॐ ह्रीं श्री आकाश द्रव्य स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

परिणामादिक लक्षण वाला, अरु द्रव्य परिवर्तन रूप।
वह व्यवहार काल है जानो, समय घटिकादि जान स्वरूप॥
जिसका लक्षण मात्र वर्तना, उसे काल निश्चय जानो।
है परमार्थ कीलवत् दूजा, चक्र समा पहला मानो॥

ॐ ह्रीं श्री काल द्रव्य स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥8॥

विद्यमान हैं पंच द्रव्य ये, अतः अस्ति जिनदेव कहें।
काय समा हैं बहु-प्रदेशी, अतः काय भी इन्हें कहें॥
जीव व पुद्गल धर्म, अधर्म, अरु आकाश पांच इनको।
एक प्रदेशी काल छोड़कर, अस्तिकाय मानो सबको॥

ॐ ह्रीं श्री अस्तिकाय स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

भव में जीव तत्त्व प्राणों का, धारी होता है जग में।
ज्ञान दर्श ये प्रमुख जीव के, गुण अनंत भी हों जिसमें॥
राग युक्त हो कर्म बांधता, राग मुक्त छूटे भव से।
अशुद्ध नय से मूर्त रहा है, हो अमूर्त्त शुद्ध नय से॥

ॐ ह्रीं श्री जीव तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

अजीव तत्त्व है चेतन विरहित, चेतन का है उपकारी।
पुद्गल आदिक द्रव्य तथा वे, आस्रवादि हैं जड़कारी॥
अजीव तत्त्व के रूप रहे हैं, जिस अजीव के मिलने से।
तथाहि रहने, रुकने, क्षय से, अन्य तत्त्व बनते इससे॥

ॐ ह्रीं श्री अजीव तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

जिन परिणामों से आतम में, कर्मों का आना होता।
जिनवर द्वारा कथित उसे ही, भावास्रव कहना होता॥
जाने उसको द्रव्यास्रव भी, आते हों वे कर्म जभी।
कषाय योग ये रहते जब तक, न रुकते वे कर्म कभी॥

ॐ ह्रीं श्री आस्रव तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

जिस चेतन के निज भावों से, कर्म बंध जु बंधता है।
वही रहा है भाव-बंध वह, ऐसा आगम कहता है॥

कर्म प्रदेशों का आतम में, आपस में हो एकाकार।
दुग्ध नीर या आग लोह वे, जैसे मिलते हैं साकार॥

ॐ ह्रीं श्री बन्ध तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 13॥

कर्मास्रव रुकने में कारण, निज का जो परिणाम रहा।
वही भाव-संवर तुम जानो, रोके कर्म हि ज्ञान रहा॥
कर्मास्रव का रुक जाना ही, द्रव्य रूप संवर जानो।
व्रत लेने में संवर बढ़ता, मोक्ष-मार्ग में शुभ मानो॥

ॐ ह्रीं श्री संवर तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 14॥

जिस चेतन परिणाम हेतु से, स्वकाल अथवा तप से जो।
भोगा गया हि फल जिसका हो, ऐसा कार्मण पुद्गल वो॥
झड़ता है तब भाव निर्जरा, आगम कहता है जानो।
पुद्गल कर्म झड़े मात्र तब, द्रव्य निर्जरा तुम मानो॥

ॐ ह्रीं श्री निर्जरा तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15॥

शुभ-भावों सह सर्व जीव वे, पुण्य रूप मय होते हैं।
अशुभ-भाव से सर्व जीव वे, पाप रूप मय होते हैं॥
वेदनीय-साता शुभआयु व, शुभ ही नामकर्म जानो।
उच्च गोत्र सह पुण्य प्रकृतियां, शेष पाप ही सब मानो॥

ॐ ह्रीं श्री पाप-पुण्य स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 16॥

आत्म बिना वह अन्य द्रव्य में, रत्नत्रय न रहता है।
इस कारण से रत्नत्रय मय, निज ही कारण शिव का है॥
निज श्रद्धा ही समदर्शन है, निज जाने ही सम्यग्ज्ञान।
निज में रमना वह चारित है, मिलें तीन, निश्चय पथ जान॥

ॐ ह्रीं श्री अभेद रत्नत्रय स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥17॥

जिस कारण से मुनिवर दोनों, प्रकार के शिव साधन को।
ध्यानी बनकर पाते निश्चित, ऐसे भविजन कारण को॥
तुम भी पाकर पुरुषार्थी बन, ध्यान धार अभ्यास करो।
भली -भांति हि भव सुख तजकर, निज-सुख में तुम वास करो॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक् ध्यान भेद स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥18॥

कुछ भी चेष्ठा नहीं करो तुम, वचनों से भी न बोलो।
विचार भी तुम मत करना वा, लीन आप में थिर हो लो॥
ऐसा करने से आतम यह, ध्यान लीन हो जाती है।
ऐसा ही है परम ध्यान वह, जग में आत्म सुहाती है॥

ॐ ह्रीं श्री आत्मलीनता स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥19॥

जो चेतन परिणाम सर्व उन, कर्मों के क्षय का कारण।
होता है जब उसको जानो, भाव-मोक्ष है वह पावन॥
तथाहि कर्मों का हट जाना, द्रव्य-मोक्ष कहलाता है।
है कैवल्य भाव-मोक्ष वह, द्रव्य-मोक्ष शिव दाता है॥

ॐ ह्रीं श्री मोक्ष तत्त्व स्वरूप सह प्रवचनभक्ति भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

जयमाला

लय- प्यारे-प्यारे गुरुवर मेरे.......

जिस भाविक के मन में सम्यग्-ज्ञान सु-धारा बहती है ।
उसी जीव के जीवन में सुख-शांति सदा वह रहती है ॥
सम्यग्दर्शन धारण कर हम, ज्ञान-पिपासु बन जाएँ ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥
रही प्रार्थना जिनवाणी से , विषय-सौख्य मैं ना चाहूँ ।
आत्म-सुखों से पूर्ण बनूँ मैं , साधु-सुपद को नित चाहूँ ॥
कर्म नाश कर शिव-सुख पाने, मोक्षमार्ग में रम जाएँ ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥
रही भारती सरस्वती जो, तथा शारदा माता है ।
नहीं धारती श्रृंगारों को, वीतराग शिवदाता है ॥
मात्र जो स्त्री-लिंग शब्द है, दिव्यध्वनि जो जिन गायें ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें॥
तीर्थंकर जिन से निकली जो, सम्यक् मंगलमय वाणी ।
गणधर मुनि ने ग्रंथरूप से, गूँथी हैं जो जिनवाणी ॥
उत्तम जिनवाणी को पढ़कर, जिनवर-सम हम बन जाएँ ।
जिनवाणी माँ प्रवचन की हम, करें भक्ति शुभ गुण गायें ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनभक्ति भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥21॥

जिनवाणी माता हमें, दे शुभ शिव जो धाम।
जिनवाणी माता हमें, दे शुभ स्व जो राम॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्ति भावनायै नमः।

•••

14. आवश्यकापरिहाणि भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

समता संस्तुति और वंदना, प्रत्याख्यान करें मुनिजन ।
प्रतिक्रम करते तन से तजते, ममता को हैं वे यतिजन ॥
धर्ममयी वे शुभ-भावों से, आतम शुद्ध बनाते हैं ।
कर्मों का वे संवर, क्षय कर, पंचम शुभ गति पाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

लय- आदिम तीर्थंकर...

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥

आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान्॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
आवश्यक परिपूर्ण को, देयँ अर्घ गुण गाय॥

आवश्यक पलते जहाँ, वहाँ अलौकिक मर्म।
आवश्यक पलते वहाँ, जहाँ न लौकिक धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- चरणों में नमन हमारा....

जीव मात्र में समता होना, संयममय शुभ-भाव रहे ।
ध्यान अशुभ जो आर्त्त रौद्र है, उन सबका जब त्याग रहे॥
तथा बंधु अरु बैरी में वा, सुख-दुख अथवा घर वन में ।
नहीं राग व द्वेष धारते, ध्यान करें मुनि चेतन में ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार सामायिक सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

वीतराग सर्वज्ञ कहे जो, सर्व हितैषी गुणनामी ।
ऋषभ अजित संभव तीर्थंकर, -आदि कहे जो सुखधामी ॥
जिनकी संस्तुति करें साधुजन, अन्तर्मन से गुण गायें ।
कर्म नाशकर इक दिन वे मुनि, गुणधामी जिन बन जाएँ ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार संस्तुति सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

किसी एक जिन-तीर्थंकर के, गुण का गान करें मुनिजन ।
वंदन करते संस्तुति करते, उत्तम भावों से यतिजन ॥
गद्-गद् भावों से गुण गाते, रोम-रोम जब उठ जाते ।
तीर्थंकर-सम पुण्य मिले वा, अशुभ कर्म तब कट जाते ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार वंदना सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै

अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

प्रमाद अथवा भूल-चूक से, जहाँ व्रतों में दोष बनें ।
प्रतिक्रमण से परिमार्जित कर, नित्य साधु निर्दोष बनें ॥
निंदा गर्हा करते, कहते-मम अपराध क्षमा होवे ।
कर्ज चुकाते अपराधों का, फिर ना पाप जमा होवे ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार प्रतिक्रमण सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

आगे वह ना होने पाये, पाप-कर्म का बंध कदा ।
मोक्षमार्ग में बाधक कारण, उसे त्यागते साधु सदा ॥
आहारादिक तथा दोष का, त्याग करें जो निश-दिन हैं ।
प्रत्याख्यान कहा जिन-पथ में, सदा धारते यतिजन हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार प्रत्याख्यान सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

षट् आवश्यक कार्य करें जब, ममता तजते तन से जो ।
पंच परम उन परमेष्ठी का, करें ध्यान नित मन से जो ॥
और आत्म में लीन रहें जब, कायोत्सर्ग उसे जानो ।
सभी कर्म का क्षय होवे वह, मिलता मोक्ष शीघ्र जानो ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार कायोत्सर्ग सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 6 ॥

सम्यग्दर्शन शुद्ध गहे वह, भव तन सुख का त्याग करे ।
भोगों में वह उदासीन हो, जिनवर में शुभ राग करे ॥
अष्ट मूल उन गुण का पालक, दर्शन प्रतिमा धारी हो ।
शुद्धाहार व जलगालन-सह, श्रावक-पद अधिकारी हो ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनप्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा ॥ 7 ॥

माया, मिथ्या, निदान शल्यों, का त्यागी हो व्रतधारी ।
निरतिचार हि-देश व्रती जो, सप्तशील का भी धारी ॥
अणुव्रत व गुण, शिक्षाव्रत का, सदा हि परिरक्षक होता ।
शील बाड़-सम गहे वही व्रत,-प्रतिमाधारक है होता ॥

ॐ ह्रीं श्री व्रतप्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 8 ॥

चार बार जो तीन-तीन वे- शुभ आवर्त करें जानो ।
चार बार हैं प्रणाम करते, सामायिक में शुभ मानो ॥
कायोत्सर्ग खड़े होकर के, चार बार हो संग विरत ।
तथा बैठकर नमस्कार दो, शुद्ध सुयोग त्रिकाल निरत ॥

ॐ ह्रीं श्री सामायिकप्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 9 ॥

मास-मास के चारों पर्वों, में प्रोषध-उपवास करें।
आत्मिक-बल को उद्घाटित कर, कर्त्तव्यों में वास करें॥
आगे-पीछे एकाशन हो, प्रोषध वह है कहलाता।
चारों आहारों का तजना, वह उपवास कहा जाता ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रोषधोपवास प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 10 ॥

दयामूर्ति हो कच्चे जल अरु फल व शाक सब्जी आदिक ।
कोपल, अंकुर, बीज धान्य वे, तथा पुष्प व जड़ आदिक ॥
योनिभूत हों, जीवसहित हों, ना सेवें सु-विचार करें ।
इन सबको वे प्रासुक करते, अग्नी का संस्कार करें ॥

ॐ ह्रीं श्री सचित त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै

अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

करुणाधारी निशि में भोजन, मन वच तन से पूर्ण सदा-।
तजते खाद्य, स्वाद्य, पान अरु लेह्य भोज्य वह पूर्ण सदा॥
प्रतिमा पहले, स्वयं रात में, भोजन के त्यागी बनते।
छटवी प्रतिमा में निशि भोजन-के अनुमोदक ना बनते॥

ॐ ह्रीं श्री रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

मात-पिता के रज वीरज से, बना मलिनता है लाता ।
मल-मूत्रादिक झरें रात -दिन, तथा दुर्गंधि फैलाता ॥
ग्लान उपजती ऐसे तन को-देख काम-सेवन तजते ।
स्व-पर स्त्री को मात बहिन सम, समझें ब्रह्मचर्य भजते॥

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्य प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

प्राण-घात के कारण ऐसे, कृषि नौकरी वा व्यापार ।
तथा और भी आरंभी वह, हिंसा तज हि पुण्य अपार ॥
जिन-पूजा गुरु-भक्ति दान वे, महारंभ ना कहलाते ।
महापुण्य दें लेश पाप हो, धुलें पाप शुभ गति पाते॥

ॐ ह्रीं श्री आरंभ त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 14 ॥

क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपदरु, चतुष्पद शयनासन, यान ।
कुप्य, भांड ये दशों परिग्रह, बाह्य-संग हि जिनको जान॥
पाप छोड़ने, भव्य आतमा, इनसे ममता तजता है।
स्वस्थ बनें वह संतोषी भी, संग विरति पद भजता है॥

ॐ ह्रीं श्री परिग्रह त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि

भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 15 ॥

स्वयं मात्र के अति आवश्यक, साथ परिग्रह जो रखता ।
खेती-संग व लोक-कार्य की, अनुमोदन ना जो करता ॥
वैभव आशा छोड़ हानि वा-लाभों में समता रखता ।
एकाशन कर अनुमति का वह, त्यागी शुभ भावन रखता ॥

ॐ ह्रीं श्री अनुमति त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 16 ॥

गृह तज मुनि वन जाकर गुरु के -पास, व्रतों को गहता है ।
मुनियों के पीछे चलकर वह, भिक्षा-भोजन करता है ॥
खण्ड-वस्त्र का धारक ऐलक, क्षुल्लक भी वह कहलाता ।
खड़ाऊँ, पगड़ी, मठ आशा न, मुनि सह तप है मन लाता॥

ॐ ह्रीं श्री उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

देश-व्रती जु, पाक्षिक नैष्ठिक, श्रावक कर्म खपाते हैं ।
सल्लेखन को धारण करते, साधक वे बन जाते हैं ॥
निर्मल भावों सह वे होते, बाल-सु-पंडित-मरण करें ।
महाऋद्धि सह देव सु-पद पा, नरगति पा शिव-गमन करें ॥

ॐ ह्रीं श्री सल्लेखन व्रत सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

दोहा

सदा लोक में जीव सब, पूजन से भगवान ।
गुरु सेवा कर्त्तव्य में-पूर्ण बनें गुणवान॥

ॐ ह्रीं श्री देवपूजा, गुरुपास्ति कर्त्तव्य भाव सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

ज्ञान बढ़े, संयम रहे, निर्दोषी तप, दान।
रहे भाव जिन में सदा, मिले मोक्ष-कल्याण॥

ॐ ह्रीं श्री स्वाध्याय, संयम, तप, दान कर्त्तव्य भाव सह आवश्यकापरिहाणि भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

जयमाला

लय : आर्जवसागर नाम ऽऽऽ.......

योग्य काल में योग्य सुविधि सह, मुनि आवश्यक नित पालें ।
मन-मर्कट को वश में रखते, विषय-सुखों में रुचि ना लें ॥
सूर्यकिरण की चकाचौंध पर, जैसे आँखें ना टिकतीं ।
वैसे ही ज्ञानी मुनिवर की, मति विषयों पर ना टिकती ॥
ध्यान परम उस निश्चय में जब, नहीं ठहरना होता है ।
तभी आत्म से बाहर आ यति, वंदनादि में खोता है ॥
शुभ सम्यक्-व्यवहार कहा वह, वंदनादि जो पहचानें ।
निश्चय में जाने का कारण, आगम कहता वह जानें ॥
बने उदासोहं जब मानव, फिर दासोहं बन जाता ।
मुनि बनकर फिर कर्म नाशकर, सोहं जिनवर-सम भाता ॥
दूर कर्म वा इस तन से जब, अहं-एक में लीन रहे ।
धर्ममार्ग की महिमा न्यारी, सदा स्वयं स्वाधीन रहे ॥
निर्दोषी चर्या के पालक, धन्य मुनीश्वर साम्यधनी ।
आवश्यक से सजें यतीश्वर, शिवगामी गुणधाम धनी ॥
हम सबके आदर्श महामुनि, जिनको शत-शत बार नमन ।
तव सेवा से शिव का कांक्षी, मम पापों का होय शमन ॥

ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा ॥ 21 ॥

यति आवश्यक पालते, कहते राम सु-नेक।
यति आवश्यक टालके, गहते काम न एक ॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री आवश्यकापरिहाणि भावनायै नमः।

•••

15. मार्गप्रभावना भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- चरणों में नमन हमारा...

तीन लोक में उत्तम जानो, जैनधर्म विख्यात रहा ।
मूल अहिंसा संदेशों का, दीप जले दिन-रात रहा ॥
जीव मात्र में मैत्री होना, जैनधर्म सिखलाता है ।
अतः लोक का धर्मी मानव, उसके गुण को गाता है ॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्ग प्रभावना भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥

मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
मार्ग प्रभावन भाव को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
मार्ग प्रभावन नित करें, अन्तर सुख उग जाय।
मार्ग प्रभावन हित करें, अन्तर दुख भग जाय॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- आत्मबोध शतक की...

रत्नत्रयमय विश्व-धर्म की, प्रभावना इस जग में हो ।
कण-कण में इस पृथ्वी पर वह, दया-भाव मग-मग में हो ॥
मिथ्यातम का अंधकार सब, मिटे सभी को सौख्य मिले ।
फहराये वह धर्मध्वजा व, त्याग-मार्ग से मोक्ष मिले ॥

ॐ ह्रीं श्री त्याग सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 1 ॥

धर्मीजन की धर्म-कथाएँ, नैतिकता की चर्चाएँ ।
जिन-मुनि आगम की होती हैं, जहाँ सदा वे अर्चाएँ ॥
व्रत संयम तप सम्यग्दर्शन-का उपदेश सदा चलना ।
रहे प्रभावन शास्त्र कही जब-कथनी जीवन में पलना ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञान सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

मोक्षमार्ग के पथिकजनों को, आहारादिक दान करें ।
धर्म बढ़ेगा धर्मी से ही, धर्मी का सम्मान करें ॥
धर्मी-सेवा सदा गुणों की, उन्नति का उत्तम साधन ।
वीतराग उन धर्मी से ही, मिले मोक्ष वह शिव पावन ॥

ॐ ह्रीं श्री शक्ति सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

नहीं पूज्य बन सकता मानव, जिसने की ना पूजा है ।
पूजा पूज्य बनाती सुन लो, मार्ग वही ना दूजा है ॥
मान गलाने वाला देखो, वैमानिक भी बन जाता ।
तथा वहाँ से आकर भू-पर, पूज्य बने शिव को पाता ॥

ॐ ह्रीं श्री भक्ति सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

आहारौषध उपकरणों को, यति को देवें व आवास।
मंगलमय हो मुनिवर जीवन, स्वर्ग मिले फिर मुक्ति-वास॥
पंच परम उन परमेष्ठी की, पूजा-अर्चा साथ रहे ।
गंदा कपड़ा धोने जैसी, आतम होती साफ रहे॥

ॐ ह्रीं श्री दान सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

त्यागें सातों व्यसन तभी जन, स्वदार-संतोषी बनते ।
सप्तम प्रतिमा धारे भवि हि, पूर्ण ब्रह्मचारी बनते ॥
मुनि बन पाते शील अठारह-हजार उत्तम शिवगामी ।
परम शील की महिमा पावें, सभी-प्रभावक सुखधामी ॥

ॐ ह्रीं श्री शील सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

आत्मशुद्धि के कारण भविजन, समता-सह उपवास करें ।
सिंहनिष्क्रीड़ित चारित शुद्धि-कर कर्मों का नाश करें ॥
आत्मशक्ति वह जागृत होती, व्रत-सह उन उपवासों से ।
बढ़े प्रभावन जैनधर्म की, तप-सह चातुर्मासों से ॥

ॐ ह्रीं श्री तप सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

बड़े-बड़े जिन-उत्सव करना, जिन-वैभव को दिखलाना।
तीर्थंकर के हुए पंच उन, कल्याणक के गुण गाना ॥
सिद्धचक्र पूजा कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज भी रचवाना ।
जैनधर्म की करें प्रभावन, समकित पा शिवपुर जाना ॥

ॐ ह्रीं श्री वैभव सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

(वसन्ततिलका छन्द)

लय- भक्तामर स्तोत्र...

श्रीमज्जिनेन्द्र प्रभु के शुभ गीत गाऊँ।
मैं चाहता यह भवोदधि पार पाऊँ॥
मैं मांगता न कि कभी शिव दूर होवे।
चाहूँ कभी शरण ये न सुदूर खोवे॥

ॐ ह्रीं श्री प्रभु गुणगायन सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

(वसन्ततिलका छन्द)

सौभाग्य से यह अहो! क्षण सौम्य आया।
पाया महा धरम ये प्रभु का बताया॥
धारूँ उसे हृदय में सिर को झुकाके।
होऊँ सुखी बस शिवालय मोक्ष पाके॥

ॐ ह्रीं श्री जिनधर्म धारण सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥10॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- कुन्दकुन्द से दिगम्बर...

जिस पर्वत वा पुण्यधरा का, कण-कण पवित्र पावन है।
उस भू पर्वत को है वंदन, जो शिव पद का साधन है॥
उन सिद्धों की पुण्यवर्गणा, जिस पर्वत पर बिखर रहीं।
उन सिद्धों के गुण को गाकर, भवि आतम सब अमर रहीं॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थ वंदन सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥11॥

गंध बिना वह फूल कभी भी, शिखर बिना वह जिन-आलय।
नहीं शोभता जैसे सद्गुरु-बिना कभी वह विद्यालय ॥
उसी तरह बिन सम्यग्दर्शन-भेष साधु का कभी कहाँ ?
पाता शोभा नहीं साधु वह, रहा स्वादु है अभी वहाँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥12॥

समदर्शन सुज्ञान चरण यह, मोक्षमार्ग कहलाता है।
इस पर चलनेवाला सच्चा, साधक वह कहलाता है॥

इन दोनों में विनीत होना, हम सबका कर्त्तव्य रहा।
मान घटे बस यही हमारा, सुखी बने मन्तव्य रहा॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म धर्मी विनय सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 13॥

अमरचन्द थे जयपुर नृप के, दया-वृष-धारी दीवान ।
ख्यात हुए थे भारत भू पर, जिनमें थी करुणातिजान ॥
हिरणों को वह शरण मिली थी, दीवान दया-धर्मी की ।
खिला जलेबी बना अहिंसक-सिंह जीत हुई धर्मी की ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिंसा सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 14॥

बाल-ब्रह्मचारी होना हि, सबसे उत्तम माना है ।
इस भव में ना पाप-वृद्धि हो, धर्म-मार्ग अपनाना है ॥
सुखद इन्द्रियज विषयों की वह, नहीं वासना सीमित है ।
अतः त्यागता पाणिग्रहण को, मिलता सौख्य असीमित है ॥

ॐ ह्रीं श्री बालब्रह्मचर्य सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15॥

सामायिक में एक चित्त भवि, मोहादिक का त्याग करे ।
शीत-उष्ण अरु हानि-लाभ में, व्याकुलता का त्याग करे ॥
नहीं इशारा शब्द करे वह, मौन धारता सुखकारी ।
उपसर्गों में करें निर्जरा, धन्य साम्य वह सुखकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री उपसर्ग विजय सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 16॥

निरतिचार जब पालें व्रत को, शील आचरण हो निर्दोष ।
व्रत बारह से, प्रतिमाधारी, इक दिन मुनि बने निर्दोष ॥

जैनधर्म की बड़ी प्रभावन-करते शुभ मंगलकारी ।
व्रत शीलों की महिमा न्यारी, मोक्षमार्ग में शिवकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री निरतिचार शीलाचरण सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 17 ॥

जहाँ रही है पंचेन्द्रिय की, विषय बहुलता भारी है ।
सहनशीलता भी जब कम है, तथा पाप भी भारी है ॥
ऐसे विकट समय में देखो, मुनिवर का पद अपनाना ।
कठिन रहा फिर जो अपनाते, सद्दर्शी के गुण गाना ॥

ॐ ह्रीं श्री दिगंबर मुद्रा सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

शुभ कल्याणक, प्रभो-प्रतिष्ठा, रथ-उत्सव हो जिनवर का।
अष्टाह्निक आदिक पर्वों में, गुणगायन हो - प्रभुवर का ॥
मण्डलपूजा महा रचाना, धर्म दान सुखकर करना ।
प्रवचन करना, काव्य कुशलता-से जिनधर्म प्रकट करना॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा, रथोत्सव, महापूजन, मण्डलविधान, सत्पात्र दान, प्रवचन, काव्य रचना आदि सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

परिषह सह उपवास ग्रहण कर, ध्यान धरण, विधि क्षय करना ।
दर्शन, ज्ञान, चरण को नित ही, परिमार्जित निर्मल करना ॥
रत्नत्रयमय धर्म सहित हो, जो जिन-महिमा गुण गावें ।
महाप्रभावक बन, सुर-पूजित, -हो शिव-सुख-सम्पत् पावें॥

ॐ ह्रीं श्री परिषहजय, सुध्यान, रत्नत्रय आदि सह मार्गप्रभावना भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

जयमाला

लय : दुनिया से मैं हारा, तो.......

लीन रहे मुनि रत्नत्रय में, सम्यक् धारें योग जहाँ।
हो मन स्थिर आत्मध्यान में, उत्तम सुख का भोग वहाँ॥
राग, द्वेष से ऊपर उठते, साधु शोभते जिनपथ में।
मार्गप्रभावक सम्यक् गुरु हि, पूज्य बनें हैं शिवपथ में॥
तप करते यति रत्नत्रय का, जग में प्रकाश फैलाते।
भविक देखकर यति की चर्या, त्याग-भावना मन लाते॥
करनी-सह मुनि-कथित-धर्म है, जो श्रद्धा का कारण है।
बाध्य किये बिन स्वयं धारते, व्रत मिलता सुख पावन है॥
जैसे-जैसे ध्यान तपों से, आतम शुद्ध बने जानो।
वैसे-वैसे उत्तम गुण की, वहाँ सिद्धि है भवि मानो।
परम रूप से मोक्षमार्ग में, वीतरागता वहाँ मिले।
मार्ग-प्रभावक सच्चे साधु, शिवमग हैं वे जहाँ चलें॥

ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

मार्गप्रभावन हो वहाँ, जहाँ सुनियमित धर्म।
मार्गप्रभावन हो कहाँ, जहाँ अनियमित कर्म॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री मार्गप्रभावना भावनायै नमः।

•••

16. प्रवचन-वात्सल्य भावना

॥ स्थापना ॥

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- मीठो-मीठो बोल...

द्वादशाङ्गमय सिद्धांतों में, जिनवर के उन वचनों में ।
शास्त्र-कथित जो साधुभेष हैं, तथा साधु के वचनों में ॥
सम्यक् श्रद्धा आदर से जो, विनीत बन गुण के ग्राही ।
वत्सलत्व से पूर्ण बने वे, सुधी रहे शिव के राही ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावना! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावना! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावना! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

॥ जल ॥

पिया नीर बहु काल से, नहीं मिला जिन धर्म।
धर्म नीर का पान कर, मिटे चक्र भव कर्म॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चन्दन ॥

चन्दन शीतल योग से, आत्म ताप ना खोय।
तजें विषय सुख पूर्ण जो, उन्हें आत्म सुख होय॥

रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम अक्षय बनूँ, करूँ कर्म का नाश।
लौट पुनः न आऊँ मैं, सिद्ध रहें नित पास॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अक्षयपद प्राप्तायअक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्प ॥

काम बाण उस पुष्प को, तजें काम नश जाय।
जिनवर गुण की गंध में, आतम यह रम जाय॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

काल अनादि से चखे, भोजन सरस सुरूप।
शान्त हुई ना भूख यह, छोड़ गहूँ निज रूप॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

दीप अनल से ना भगा, मेरा प्रभु अज्ञान।
ज्ञान दीप केवल जगे, बनूँ ओम् भगवान॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

जले धूप फिर भी वहाँ, नाशा तृप्त न होय।
अष्ट कर्म का नाश वह, बनूँ साधु तब होय॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

प्रासुक फल से पूजते, श्रावक जहाँ विराग।
मुनि बन फल उत्तम मिले, मोक्ष जहाँ ना राग॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ्य ॥

जो अमूल्य इस लोक में, अनर्घ पद कहलाय।
साधर्मी वात्सल्य को, देयँ अर्घ गुण गाय॥
रहे धरम वात्सल्यमय, मिले धर्म सुज्ञान।
गहें धरम वात्सल्यमय, खिले धर्म संज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येकार्घ

(ज्ञानोदय छन्द)

लय- सन्त शिरोमणि का सारा जग दीवाना...

भव-दुखसागर से तिरने को, धारें जिन-पथ व्रती महा ।
मुनि, आर्यिका, अथवा श्रावक, और श्राविका व्रती जहाँ ॥
चलें अनवरत मोक्षमार्ग में, हम सबका सहयोग रहे ।
जितना भी हो सके करें हम, सोपकार शिव योग रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विध संघ स्नेह भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 1 ॥

यथा गाय बछड़े से करती, अंतरंग से प्रेम सदा ।
उसी तरह धर्मीजन धर्मी- से करते अनुराग सदा ॥
दुख हो सुख हो सभी कार्य में, धर्मी को अपना मानें ।
वात्सल्य से गले लगायें, नहीं भेद रखना जानें ॥

ॐ ह्रीं श्री गो वत्स सम अकृत्रिम वत्सल भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 2 ॥

उत्साही हो जिनवर की सब, करें भक्ति न स्वार्थ रहे ।
तथा भक्ति हो गुरु आगम में, वहाँ सदा परमार्थ रहे ॥

शास्त्र सुने जो अन्तर्मन से, मुख व हिय सु-प्रसन्न रहा ।
वत्सलत्व हो धर्ममार्ग में, वहीं भव्य आसन्न रहा ॥

ॐ ह्रीं श्री विनय सह शास्त्र श्रवण प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 3 ॥

जितने भी लौकिक साधन हैं, नहीं सौख्य देनेवाले ।
भोग लिया कितने ही भव से, रहे दुःख देनेवाले ॥
जिनवर-वाणी अमृतमय जो, पीते गद्-गद् भावों से ।
जन्म जरा का रोग दूर हो, मिले पुण्य शुभ-भावों से ॥

ॐ ह्रीं श्री विनय सह शास्त्र पठन प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 4 ॥

बड़े-बड़े उन तप का पालन, रहे सदा वह झूठा है ।
मिथ्या-दर्शन, मद, हिंसा का, अगर मार्ग ना छूटा है ॥
तीन लोक में सम्यग्दर्शन, और अहिंसा उत्तम है ।
करें प्रशंसा वात्सल्य-सह, मिलता पद परमोत्तम है ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम धर्म स्नेह सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 5 ॥

जैसे माता जन्मे-शिशु को, उर में रख सहलाती है ।
गले लगाती गो बछड़े को, उत्तम दुग्ध पिलाती है ॥
मर्यादा रख धर्मीजन सब, करें अकृत्रिम नेह सदा ।
वात्सल्य से सुख-दुःख बाँटें, चल हिल-मिल शिव-राह सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री कुटिल स्वभाव रहित प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 6 ॥

वत्सलत्व से धर्मीजन की, बढ़ती सत्संगति जानो ।
दिन-पर-दिन ही मोक्षमार्ग में, बढ़े सुगुण सम्पत् मानो ॥
ध्वजा अहिंसा की फहराएँ, सब जग में शुभकारी है ।
दुख दरिद्र सब संकट को जो, दूर करे अघहारी है ॥

ॐ ह्रीं श्री पर दुःख दूरकरण भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

ख्यात वैद्य वह निःस्वार्थी जो, जग में सद् उपकार करे ।
पीड़ित जन के रोग मिटें अरु, सुखी बनें सुविचार करे ॥
रोगी होकर गिरे पड़े थे, ऊपर उठते राह चलें ।
साधु-वैद्य से मोहादिक वे, दोष तजें शिव-राह चलें ॥

ॐ ह्रीं श्री परोपकार भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥8॥

पिता पुत्र का हाथ पकड़ बच-पन में चलना सिखलाते ।
चलते, गिरता अगर पुत्र तो,पुनः उठा ऊपर लाते ॥
धर्मस्नेही पुरुष सदा मग, गिरते को ऊपर लाते ।
भव्यजनों को मार्ग दिखाते, मिल सब शिव-ऊपर जाते ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मार्ग दर्शक भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥9॥

सदा पाप से घृणा करो तुम, पापी से नहिं घृणा करो ।
पापी इक दिन पाप तजे फिर, पूजित बनता यहाँ अहो ॥
धर्मी के बिन धर्म रहे क्या? अतः दोष उपचार करो ।
अपने व्रत, पद की रक्षा-सह, सदा सभी उपकार करो ॥

ॐ ह्रीं श्री दोषोपचार भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥10॥

धर्मी-नारी गुप्तांगों को, सदा छुपाती रहती है ।
धर्मी-मति वैसे धर्मी के, अवगुण ढकती रहती है ॥
गुणीजनों के गुण-बखान ही, बुधजन-कार्य सदा जानो ।
चाँद देखते, नहीं दाग को, जहाँ द्योत मिलता जानो ॥

ॐ ह्रीं श्री गुण दर्शक भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 11 ॥

नेक कार्य को करते ज्ञानी, धर्म अहिंसा व-उपकार ।
व्रत संयम या दान रहा हो, कर्म-कटें व पुण्य अपार ॥
नेक-कर्म से स्वतः जगत् में, महा कीर्ति को प्राप्त करें ।
स्वयं न स्व गुण गा कर जग में, उपगूहन गुण प्राप्त करें ॥

ॐ ह्रीं श्री पर निंदा, स्व प्रशंसा दोष रहित प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 12 ॥

मन से सम्मत ना होता है, नहीं सराहन काया से ।
नहीं वचन से संस्तुति करता, दूर सरागी छाया से ॥
षट् अनायतन नहीं भजे वह, अशुभ-बंध के कारण वे ।
मिथ्यातम में भटकाते हैं, भव-पथ के ही साधन वे ॥

ॐ ह्रीं श्री मिथ्यात्व अप्रशस्त राग भाव रहित प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 13 ॥

अगर भिखारी से कुछ माँगे, वहाँ भिखारीपन मिलता ।
रहती जैसी जहाँ है वस्तु, वैसा ही जीवन ढलता ॥
प्रभु-गुण-कीर्तन करता धर्मी, प्रभु-सम बनता सुखी सदा ।
सरागता की जहाँ भक्ति हो, भव में भटके दुखी सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री सुभक्ति गुणानुराग भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 14 ॥

दीन-दुखी या अज्ञ-जनों से, नहीं घृणा जो करता है ।
तथा ज्ञान, तप, ऋद्धि आदि के, साथ गर्व ना करता है ॥
जहाँ अष्ट मद होते दिखते, निर्विचिकित्सा नहीं रहे ।
जहाँ धर्म वा धर्मी में हो-प्रेम, धर्म भी वहीं रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री घृणा भाव रहित प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 15 ॥

योद्धा जैसे रण-आँगन में, तेज धार मय असि का मूल्य ।
अधिक समझता, नहीं देखता,म्यान सुरूपी रही अमूल्य ॥
मोक्षमार्ग में ज्ञानी मुनिवर, धर्म-गुणों से शोभित हों ।
बनें विरागी, नश्वर तन को, नहीं सजाके मोहित हों ॥

ॐ ह्रीं श्री पर गुण ग्रहण भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 16 ॥

अक्षय अनंत केवलदर्शी, से जो तत्त्व सुना जाता ।
गणधर आदिक मुनियों से वह, ग्रन्थ-रूप गूँथा जाता ॥
वीतराग निःस्वार्थी मुनिवर, गुरुओं की परिपाटी से ।
कहें लिखें उस जिनवाणी को, बाँधें ना किसी जाति से॥

ॐ ह्रीं श्री जिनवाणी प्रीति गुण सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ 17 ॥

पर्वतमाला भी विचलित हो, आग सु-शीतल हो जाये ।
लेकिन तत्त्व-मार्ग से भवि की, श्रद्धा कभी न डिग पाये ॥

खड्ग धार पर लोहा-पानी, जैसे निष्कंपित रहता ।
निःस्वार्थी सद्दर्शी मग में, निर्भयता से नित रहता ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म श्रद्धा गुण सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 18 ॥

अगर स्वार्थवश धर्म किया तो, सार्थक नहीं व्यर्थ जानो ।
स्वामी आगे पूँछ हिलाता, श्वान स्वार्थी पहचानो ॥
समवसरण की जहाँ सम्पदा, उत्तम-उत्तम मिलती है ।
वहाँ भोग की तुच्छ सम्पदा, नहीं प्रयोजन रखती है ॥

ॐ ह्रीं श्री निःस्वार्थ भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 19 ॥

क्षमा मात्र कहने से प्राणी, नहीं क्षमावाणी होती।
नहीं रखेंगे बैर कभी हम, यही धर्म की है रीती॥
सारे जग में प्रेम बढ़े नित, नहीं किसी में भेद रहे।
सुखी रहें सब धर्मी जन ये, नहीं किसी को खेद रहे॥

ॐ ह्रीं श्री क्षमा भाव सह प्रवचनवत्सलत्व भावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 20 ॥

जयमाला

लय- ओ गुरुसा तेरा चेला....

सद्दर्शी जन आपस में नित, कहते हित-मित प्रिय वचन ।
धर्मीजन अरु रत्नत्रय में, धारें सच्ची प्रीति सुजन ॥
पूज्य-पुरुष-सम तदनुसार जो, क्रिया पालते शुभकारी ।
नहीं दोष में, ग्राह्य सुगुण में, रखें दृष्टि भवि सुखकारी॥

व्रतधारी उन संयमियों को, मात्र देख जो हर्षित हों ।
गुणग्राही हि इन्द्रसभा में, देवों से भी चर्चित हों ॥
प्रेम अकृत्रिम जहाँ धर्म से, वहाँ देव भी सेवक हैं ।
बिना बुलाये भू पर आकर, धर्मनाव के खेवक हैं ॥
नहीं लुभाता सम्यग्दर्शी, जग-विषयक उन वैभव से ।
देव-पदों या राज-पदों से, ना आकर्षित हो भव से ॥
प्राणों से भी अधिक कीमती, रत्नत्रय से प्रेम करे ।
तीर्थंकर पद मिले उसे ही, जो जन-जन का क्षेम करे ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

करें लोक अपकार जन, नहीं धर्म पहचान।
करें लोक उपकार जन, यहीं धर्म पहचान॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री प्रवचनवत्सलत्व भावनायै नमः।

●●● व्रत मंत्र ●●●

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यो: नमः।

•••

卐 卐 卐 卐 卐

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

लय- आदिनाथ जिनवर नमूँ ...

तीर्थंकर पदवी जहाँ, दुख भय सब भग जाय।
तीर्थंकर पदवी वहाँ, सुख मय सब जग भाय॥
दर्शनविशुद्धि भावना, भाते दर्शन आय।
दर्श-मोह-तम शीघ्र ही, बहुत दूर भग जाय॥
विनय पालते लोग जब, वीतराग की नेक।
ज्ञान चरित तप आदि गुण, जगते शीघ्र अनेक॥
शील जहाँ उत्तम पले, गले पाप का बाप।
मोक्षधाम गुणलक्ष्मी, मिलती आपो आप॥
सभी नृपों में श्रेष्ठ वह, चक्री-पद कहलाय।
स्वयं-ब्रह्म में जो रमें, ब्रह्मचर्य-सुख लाय॥
अभीक्ष्ण रहता ज्ञान में, उपयोग रु सद्-ध्यान।
ज्ञानावरणी दूर हो, जगता केवलज्ञान॥
ज्ञानों में है श्रेष्ठ वह, केवल बोधि महान।
जिसको पाने साधु बन, हम सब करते ध्यान॥
संवेगी बनता भविक, पञ्च पाप को छोड़।
लगे चित्त फिर आत्म में, जग से मन को मोड़॥
सब पुण्यों में दान वह, श्रेष्ठ सुगति ले जाय।
पानी निकले स्रोत से, नया कोष भर जाय॥
त्याग करें भवि शक्ति भर, राग सभी नश जाय।
हो अनुभूति आत्म की, शिव में आत्म सुहाय॥

तप तपते बारह सदा, जल जाते सब कर्म।
घृत-सम बनते सिद्ध वे, फिर न बँधते कर्म॥
सभी शक्तियों में सदा, आतम-शक्ति महान।
जिसके कारण ध्यान से, भविक बने भगवान॥
साधु-समाधि जो धरें, शुद्धातम का ध्यान।
पाते अपनी आत्म में, इक दिन क्षायिक-ज्ञान॥
मुनि की वैयावृत्ति से, पाप हरें भवि लोग।
अगले जीवन में सुखी, बनते पाते भोग॥
अर्हत् प्रभु की भक्ति में, आत्म-शक्ति जग जाय।
पाप कटें फिर पुण्य हों, जिन बन आत्म सुहाय॥
चिन्तामणि शुभ रत्न से, लोक-वस्तु मिल जाय।
तीन लोक के नाथ जिन, पूजे शिव-सुख आय॥
आचार्यों की भक्ति से, व्रत संयम का योग।
चरित-मोह की क्षीणता, शुद्ध होय उपयोग॥
जैनधर्म का मूल है, स्याद्वाद पहचान।
अनेकान्त से नित चलें, गुरुजन सीख महान॥
उपाध्याय गुणगान में, ज्ञान बढ़े दिन-रात।
द्वादशाङ्ग के ज्ञान-सह, ध्यान शुक्ल मिल जात॥
दर्श, ज्ञान, चारित जहँ, मोक्षमार्ग शुभ जान।
शुद्ध-आत्म के ध्यान में, पाते पद निर्वाण॥
प्रवचन-अर्चन में सदा, लीन रहें मुनिराज।
मन को चउ अनुयोग से, पुनीत करते काज॥
सब शास्त्रों का सार है, संयम, व्रत, तप, दान।
जिनके पालन से भविक, बनते हैं भगवान॥

आवश्यक कर्त्तव्य को, नितकर यति शुभ काल।
दूर रहें संसार से , भगें पाप विकराल॥
सब पुरुषार्थों में रहा, प्रथम धर्म-पुरुषार्थ।
सफल होत पुरुषार्थ सब, और मिले परमार्थ॥
तीर्थंकर के मार्ग की, प्रभावना जब होय।
जप,तप, संयम, ज्ञान की , ज्योति जले गम खोय॥
जग-कल्याणी भावना, सर्व जगत् में प्रेम।
सदा जगाती सौख्य भी, करती जग का क्षेम॥
प्रवचन-धर्मी-जन सदा, वत्सलत्व से पूर्ण।
रहें एक ही मार्ग में, सुख दें शिव संपूर्ण॥
चतुर्थ हि गुणथान से, अष्टम तक हि सुजान।
प्रकृति तीर्थंकर बँधे, जो शिव देय महान॥
सब धर्मों का धर्म ये, रहा अहिंसा मूल।
जिसके पालन से सभी, पाते शिव-पद चूल॥

ज्ञानोदय छन्द

लय- मेरे सिर पर......

षोडसकारण सदा रहे व्रत- यतियों के शुभ जीवन में ।
भव्य भक्त शुभ भाद्र, माघ वा, चैत्र मास दिन पावन में ॥
पूर्ण मास वे व्रत को धारें, अनशन, एकाशन करते ।
जिन-अर्चन, अरु षोडसभावन-भाते विधि को नित हरते॥
यहाँ काल इस पंचम में भी, जो मुनि शुद्धाचार धरें ।
सोलहकारण व्रत भावन हि, आतम में सुविचार करें ॥
लौकान्तिक देवों की पदवी, पाते स्वर्ग विरागी वे ।
तथा वहाँ से वापिस आकर, मुनि हों शिव के भागी वे ॥

मंगलमय षोडसकारण इन, भावन को सब भवि भायें ।
इन ही का नित चिंतन कर सब, सुख पावें यह कवि गायें ॥
षोडसकारण पर्व महा जो, जिसमें व्रत उपवास करें ।
बन 'आर्जव के सागर' यति हम, चलें शिवालय वास करें ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यः जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ 1 ॥

दोहा

सोलह भावन से सभी, भव सुख पाते अंत।
सोलह भावन से कभी, शिव सुख पाते संत॥

॥ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ॥

–विधान सम्पूर्ण

लोक कल्याण महामण्डल विधान जाप्य मंत्र–

ॐ ह्रीं अर्हं श्री लोक कल्याण भावना सह तीर्थंकर जिनेन्द्राय नमः ।

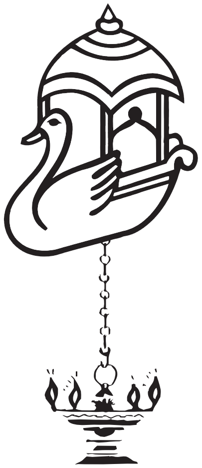

गुरुवर आचार्यश्री आर्जवसागर जी पूजन

स्थापना

भव्य जनों के तारक गुरुवर, आर्जवसागर हैं प्यारे ।
धर्म ध्यान में रहते निश-दिन चर्या में हैं जो न्यारे ।।
हम सब मिलकर भक्ति भाव से, पूजन करने आये हैं ।
आओ गुरुवर हृदय विराजो, तव गुण हमको भाये हैं ।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानन।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत श्री आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्- सन्निधिकरणम् ।

॥ जल ॥

जन्म जरा व मृत्यु रोग से, अनन्त भव से दुःख पाया ।
धर्म नीर का पान करा दो, भव से पायें छुटकारा ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ चंदन ॥

पर द्रव्यों से सुख न पाया, भव दुःख मेटो, सुख दे दो ।
सबसे उत्तम शीतल वस्तु, जिनवाणी हमको दे दो ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वापामीति स्वाहा।

॥ अक्षत ॥

अक्षत सम मेरा भी गुरुवर, पुनः न हो संसार गमन ।
सब कर्मों का क्षय करके फिर, शिव पद में हो जाय गमन ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

॥ पुष्प ॥

विषयों की मदिरा को पीकर, सुख न अनुभव कर पाये ।
आत्म सुरभि का ज्ञान करा दो, काम मिटे शिव को जायें ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ नैवेद्य ॥

भव-भव में बहु व्यञ्जन खाये, अभी भी तृप्ति नहीं मिली ।
सभी तरह की भूख मिटे बस, ज्ञान कली नित रहे खिली ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत

आर्जवसागर महामुनीन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ दीप ॥

मोह जाल में फँसकर मेरी, आत्म ज्योति न जल पायी ।
मोह तिमिर हर ज्योति जला दो, जो ज्योति तुमने पायी ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ धूप ॥

ध्यानाग्नि से कर्म जलाकर, निज स्वरूप को हम पायें ।
गुरुवर भक्ति धूप गंध से, शिव में प्रभु गुण महकायें ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ फल ॥

ले श्रीफल बादाम छुहारा, चरणन शीश नवाते हैं ।
दो आशीष कृपा के सागर, शिव पाने गुण गाते हैं ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत

आर्जवसागर महामुनीन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ अर्घ ॥

अष्ट द्रव्य का थाल सजाकर, अर्घ चढ़ाते हैं गुरुवर ।
तव सम अमूल्य पद को पाकर, शिवपद शीघ्र मिले यतिवर ।।
श्री आर्जव गुरु के चरण कमल में, वन्दन करते बारम्बार ।
महाव्रती रत्नत्रयधारी, हम सबका कर दो उद्धार ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य आचार्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भव विभूति को तज दिया, ममता से गुरु दूर ।
जयमाला वर्णन करूँ, भाव भक्ति भरपूर ।।
जयवन्तों जिन वेष हमारे, सन्तों में हैं शुभकर न्यारे ।
हैं अनन्त उपकार तुम्हारे, भव्यों के हैं आप सहारे ।।
फुटेराकलाँ में जन्म लिया है, पथरिया नगर को धन्य किया है।
पिताजी आप के शिखरचन्द जी, सौभाग्यवती हैं मायादेवी ।।
पारसचन्द शुभ नाम है पाया, शास्त्र पठन में ध्यान लगाया ।
जग से जगी असारता है, वैराग्य भाव अति उमड़ पड़ा है ।।
विद्या गुरु की कृपा है पाई, गृह त्याग की लगन समाई ।
सत्रह वर्ष में ब्रह्मचारी बन, क्षुल्लक, ऐलक दीक्षा पाई ।।
सन् अठासी में मुनि बने जब, जग ने खुशियाँ तभी मनाई ।
सोनागिरि में वेष ये धारा, दर्शन करता जग है सारा ।।
एक वर्ष तक मौन है धारा, समयसार मय जीवन प्यारा ।
महावीर सम चर्या वाले, आगम पथ पर चलने वाले ।।

तीर्थंकर पद देने वाला, तीर्थोदय है काव्य रचाया ।
काव्य कुशलता अपूर्व महिमा, कह न सकें हम इसकी गरिमा।।
गुरु के पास है सहज सरलता, वात्सल्य की बहे नर्मदा ।
जो कहते हैं वो करते हैं, आर्जवसागर सब कहते हैं ।।
माह माघ शुक्ला षष्ठी को, वृद्धाचार्य श्री सीमंधर से।
शुभाचार्य पद गुरु ने पाया, जय गुरु भविगण मन हर्षाया।।
तीन-गुप्ति बारह-तप धारें, रत्नत्रय दश धर्म सवारें ।
पंचाचार सुपालनहारे, षट् आवश्यक चर्या वाले ।।
गुरु के पास है जो भी आता, संतोषी वह बनकर जाता ।
पंचमगति के आप सहारे, पंच परावर्तन से तारें ।।
मिले हमें गुरुवर की छाया, इससे कटता भव दुःख सारा ।
सच्चे पथ से शिव पहुँचा दो, भव सिन्धु से पार लगा दो ।।

ॐ ह्रूँ श्री परम पूज्य गुरुवर अष्टोत्तरशत आर्जवसागर महामुनीन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

गुरुवर की महिमा महा, कहें शक्य ना होय ।
अल्पमति हम क्या कहें, दीप सूर्य सम होय ।।

पुष्पाञ्जलि क्षिपामि

रचना-आ. प्रतिभामति माताजी

• • ● ● आरती ● ● • •

जय जय गुरुवर भक्त पुकारें आरती मंगल गाएं।
करके आरती आर्जव गुरुवर, मोह तिमिर नश जाएं।
गुरुवर के चरणों में नमन, गुरुवर के चरणों में नमन ।।टेक।।

फुटेराकलाँ में जन्म लिया था, धन्य है माया माता,
शिखरचंदजी पिता तुम्हारे, हर्षित मन मुस्कराता,
नगर में सब जन मंगल गाएं,
नगर में सब जन मंगल गाएं, फूले नहीं समाएं,
करके आरती ....।। 1।।

सूरज-सा था तेज आपका, नाम पारसचंद पाया,
बीता बचपन आयी जवानी, घर से मन अकुलाया,
ये सब कुछ तो नाशवान है,
ये सब कुछ तो नाशवान है, भाव विराग जगाएं,
करके आरती ....।। 2।।

विद्यासागर गुरुवर ने ये दीक्षा दे उद्धारा,
देख के मन की निर्मलता को, आर्जवसागर कह पुकारा,
चारित्र रथ पर चढ़ गए गुरुवर,
चारित्र रथ पर चढ़ गए गुरुवर, मुक्ति वाट निहारे।
करके आरती ....।। 3।।

धन्य है जीवन, धन्य है तन मन, मिलकर जो गुण गाएं,
स्वर्ग सम्पदा सब कुछ पाकर, मनुज जन्म फल पाएं।
दिव्य ज्ञान तुमसे हम पाकर,
दिव्य ज्ञान तुमसे हम पाकर, लोक शिखर पा जाएं,
करके आरती ....।। 4।।

लोक-कल्याण विधान की आरती

लय- भक्ति बेकरार है.....

,जग-जन हित की भावना, जग कल्याणी भावना।
आओ हम सब करें आरती, बनने जिन; आराधना।
जग......

वीतराग जिनेश्वर प्रभु की, महिमा बड़ी निराली है।[2]
सुर, नरेन्द्र भी करते इनकी, भक्ति थुति अति प्यारी है।[2]
जग......

समवसरण के मध्य विराजे, तीर्थंकर मनहारी हैं।[2]
लोक पदार्थ झलकते इनके, केवल ज्योति सु न्यारी है।[२]
जग......

जीवों के हित वाणी खिरती, अतिशयमय अघहारी है।[2]
प्रभु की वाणी सुनकर तरती, जनता भव से सारी है।[2]
जग......

सोलह भावन भाने से भवि, बने तीर्थ अधिकारी हैं।[2]
महापर्व षोडसकारण है, संकटहर, सुखकारी हैं ।[2]
जग......

अर्हत् प्रभो की भक्ति आरति, देती शिवपद सुख भारी।[2]
हम सब वंदन करते पद में, **प्रतिभा** जागे शुभकारी।[2]
जग......

लोक-कल्याण का पाठ

-आचार्यश्री आर्जवसागरजी

श्री लोक-कल्याण का पाठ, करो दिन रात, ठाट से प्राणी।
फल पा लो शिव रजधानी॥
तीर्थंकर जो निज-ज्ञानी थे, आत्म तत्त्व के ध्यानी थे।
जिनके दर्शन से, तिर जाते हैं प्राणी।
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ, ...
श्री लोक-कल्याण जो करते हैं, वे महापुण्य से भरते हैं।
स्वर्ग जायें फिर, बन जाते जग स्वामी।
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ, ...
श्रीषेण महा जो राजा थे, मुनि सेवक वे महाराजा थे।
वैयावृत्ति से शान्तिनाथ हुए स्वामी।
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ, ...
देवों ने रत्न वर्षाये थे, कर नृत्य हर्षाये थे।
अतिशय पुण्य का अर्जन कर, हों स्वामी॥
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ, ...
सोलहकारण व्रत धारी थे, तप और त्याग मनहारी थे।
शुभ-भावों से, शुभगति पाते प्राणी॥
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ,.......
दीक्षा वा केवलधारी थे, अरु मोक्षमार्ग अधिकारी थे।
समवसरण लख, 'आर्जव' हों शिवगामी॥
फल पा लो शिव रजधानी॥
श्री लोक-कल्याण का पाठ,.........

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का संक्षिप्त परिचय

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- ११.९.१९६७, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- १९.१२.१९८४, अतिशय क्षेत्र, पनागर(म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	- १९८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	- ८.११.८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
ऐलक दीक्षा	- १०.७.१९८७, अतिशय क्षेत्र, थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- ३१.३.१९८८, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, महावीर जयन्ती सन् १९८८
दीक्षा गुरु	- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्यपद	- २५.०१.२०१५ (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	- धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जिनवर-स्तुति, साम्य-भावना, जैन शासन का हृदय, आगम-अनुयोग, लोक - कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य, अध्यात्म समयोदय काव्य, गुरु गुण-महिमा काव्य, आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग-प्रभावना काव्य, अंतादि शतक
पद्यानुवाद	- गोमटेशथुदि, जिनागम-संग्रह (वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, द्रव्य-संग्रह), तत्त्वसार एवं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका, भक्तामर स्तोत्र।

लोककल्याण महामण्डल विधान में सोलहकारण भावनाओं के अनुसार सोलह कोठों का मण्डल।

भावनाएँ		अर्घ्य	भावनाएँ		अर्घ्य
1. दर्शनविशुद्धि भावना में	–	71	9. वैयावृत्य–करण भावना में	–	21
2. विनय–सम्पन्नता भावना में	–	21	10. अर्हद्–भक्ति भावना में	–	54
3. शीलव्रतेष्वनतिचार भावना में	–	35	11. आचार्य–भक्ति भावना में	–	21
4. अभीक्ष्ण–ज्ञानोपयोग भावना में	–	29	12. बहुश्रुत–भक्ति भावना में	–	22
5. अभीक्ष्ण–संवेग भावना में	–	21	13. प्रवचन–भक्ति भावना में	–	21
6. शक्तितस्–त्याग भावना में	–	24	14. आवश्यकापरिहाणि भावना में	–	21
7. शक्तितस्–तप भावना में	–	35	15. मार्गप्रभावना भावना में	–	21
8. साधु–समाधि भावना में	–	22	16. प्रवचन–वत्सलत्व भावना में	–	21

संपूर्ण जयमाला महार्घ्य-1 । इस प्रकार कुल अर्घ्यों की संख्या- 461 हैं।